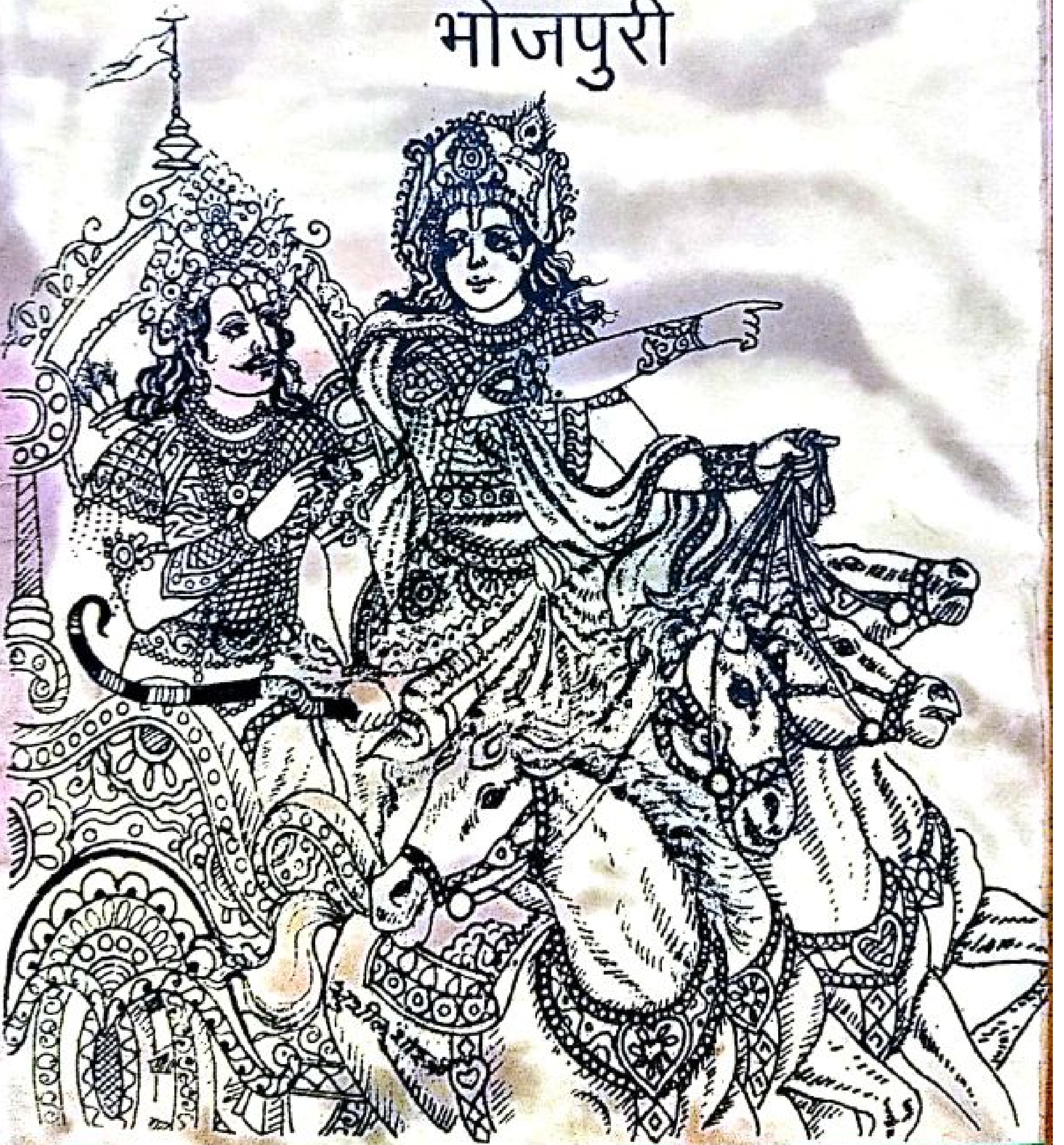
गीता भाव प्रकाश

श्रीमद् भागवत गीता

भोजपुरी



डा0 उमेश झा "परदेशी"

गीता भाव प्रकाश

श्री मद्भगवद्गीता



डा० उमेश झा "परदेशी"

स्वतंत्रता सेनानी एवं पत्रकार

ग्राम–अवाम, पत्रा0–रतौल, जिला–दरभंगा द्वारा अनुवादित।

आवास : – हॉस्पीटल रोड, पत्रा0 – डी0 एम0 सी0,

दरभंगा–846003.

प्रकाशक :–

महाविद्या प्रकाशन

अस्पताल रोड, लहेरियासराय

पो० – डी० एम० कॉलेज

दरभंगा – 846003

मूल्य – 30 (तीस) रूपये मात्र ।

मुद्रक :–

दरभंगा ऑफसेट प्रिन्टर्स

औद्योगिक प्रांगण, धरमपुर, दरभंगा

दूरभाष :– 23800 (प्रेस), 22940 (का0)



मातृ देवो भवः

जिनके से सिखनी ई भाषा
माँ गंगा बा जिनकर नाम
उनके हाथे सौंपनि गीता
चरण में उनके सदा प्रणाम

उमेश

चि० मोहन जी को सस्नेह भेंट। उमेश



लेखक

डा० उमेश झा "परदेशी"

स्वतंत्रता सेनानी एवं पत्रकार

आत्म-निवेदन

महाभारत युद्ध के पहिल का दिन अगहन शुक्ल एकादशी के युद्ध भूमि कुरू क्षेत्र में दुनू सेना के बीच आपन कुटुम्ब सम्बन्धी के देखला से अर्जुन के जे मोह पैदा भईल रहे, ओही मोह के भंग करे खातिर उनके सारथी बनल भगवान श्री कृष्ण जे उपदेश देहले, जेकरा भगवान वेदव्यास आपन महाभारत पुस्तक के भीष्म पर्व के गीता खंड में अट्ठारह आध्याय सात सौ श्लोक में संकलित कईनी। जेकर नाम श्रीमद्भगवत गीता पड़ल। गीता स्वयं श्री कृष्ण के मुख से निकसल वाणी हऽ।

कहल बा :— गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभास्या मुख पध्नाद्विनिःसृता।।

सब प्रसिद्ध गीता टीकाकार के गीता में केवल 700 सौ श्लोक के टीका कईल बा। आदि शंकराचार्य के गीता भाष्य, लोक मान्य तिलक के गीता रहस्य, गीता प्रेस के प्रायः सब गीता हिन्दी अथवा अंगरेजी के, साते सौ श्लोक बाटे। केवल सर्व पल्ली डा० राधा कृष्णन के टीका में एक श्लोक फाजिल तेरहवाँ अध्याय में मिलत बा।

हमहुँ श्री गीता भाव प्रकाश में केवल साते सौ श्लोक के टीका कईले बानी। एक श्लोक धृतराष्ट्र के, 40 चालीस श्लोक संजय के 84 चौरासी श्लोक अर्जुन के एवं 575 श्लोक श्री भगवान कृष्ण के कहल बा।

लेकिन बम्बई से गण पत कृष्ण जी प्रेस से मुद्रित महाभारत के भीष्म पर्व में 18 अध्याय के बाद 45 श्लोक ज्यादा मिलइता।

लिखल बा :— षदशतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुन सप्त पंचाशत सप्तषष्टिं तु संजयः।
धृतराष्ट्र श्लोक में कं गीता या मानमुच्यते।।

लेकिन गीता के महान विद्वान टीकाकार नील कंठ जी साफ शब्द में लिखले बाड़े जे ई 45 श्लोक पढ़नीय नईखे।

अनेक ज्ञान विषयक्त ग्रन्थ पुराण, उपनिषद आदि में गीता नाम से अनेको श्लोक विभिन्न ऋषि, ज्ञानी द्वारा संकलित मिलतबा। जईसे 1. अष्टज्ञवक्र गीता, 2. राम गीता, यम गीता, पिंगल गीता, शपांक गीता, हंस गीता, अनुगीता, अवधुत गीता शिवगीता, देवी गीता किन्तु श्री मदभगवत गीता के आगे सब बौना बा।

कइल बा :— सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थोवत्स सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं भ्रहत्।।

जेतना उपनिषद पुराण बा से गाय बानी, स्वयं श्री कृष्ण ओकरा दुहे वाला यादव बानी। चतुर अर्जुन दुध पीये वाला बछड़ा बाड़े और जे दुध दुहल गईल से गीता रूपी अमृत बाटे।

गीता शास्त्र में कर्म योग के प्रधानता बा, ओह में निष्काम कर्म योग श्रेष्ट मानन बा। भगवान कहले बाड़े संन्यास कर्म से जीवन यापन ना चल सकेला। आसक्ति त्याग के कर्म करे के चाहीं। जे जन कल्याण कार्य में रत रही , ऊ मनुष्य दुर्गति के ना प्राप्त होई, उहे मोक्ष के अधिकारी बा। गीता में अध्यात्मवाद, के प्रधानता बा बिना अध्यात्म के ज्ञान संभव नईखे, ज्ञाने भईला पर मनुष्य के संसार के चक्कर से छुटकार मिल सकेला। एहमें भगवान किर्तन, मनन, चिन्तन के आदेश देले बानी।

एकरा टीका करेके प्रेरणा हमरा आपन मामा स्व0 श्री ठाकुर दत्त झा से मिलल। हमार ममहर चम्पारण जिला के जोगापट्टी थाना के बरवा ओझा गाँव में बा। हमार बहुत समय ओही गाँव में बितल बा एहसे हमरा भोजपुरी भाषा के ज्ञान भईल। व्यस्त जीवन के कारण ई टीका करे में हमरा पैंतिस बरस लाग गईल बा।

हम सबसे बड़ा आभारी कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डा0 राम करण शर्मा एवं पूर्व डायरेक्टर मिथिला रीसर्च यूनिर्भसीटी के पं शोभा कान्त जयदेव के बानी जे हमार प्रथम अध्याय के अनुवाद सुनला के बादे हमरा आगे ग्रन्थ पूरा करे खातिर प्रोत्साहित कईनी।

हम ज्यादा आभारी स्व0 गुरूदेव डा0 कपिल देव प्रसाद विभागाध्यक्ष सर्जरी दरभंगा मेडिकल कॉलेज , सहयोगी डा0 इन्द्रासन सिंह जी के बानी जिनका सम्पर्क हमार भोजपुरी भाषा बोले के लरी ना टुटल।

हम मिथिला के महान न्याय शास्त्र विद्वान पं. रतीश झा जी नवानी के पूर्ण आभारी बानी जिनका सहयोग से हमरा संस्कृत भाषा के ज्ञान प्राप्त भईल।

हम आभारी प्रसिद्ध साहित्यकार विद्वान, पूर्व सांसद स्व0 शंकर दयाल सिंह जी तथा पूर्व मुख्य मंत्री स्व0 केदार पाण्डे जी के बानी जे हमरा से गीता सुन सुन के बराबर उत्साहित कईनी।

फेर हम बिहार निगरानी विभाग के डी0 आई0 जी0 श्री डी. पी. ओझा आई0 पी0 एस0 पूर्व स्वास्थ्य मंत्री श्री लाल मुनी चौवे जी, पूर्व सांसद जनार्दन तिवारी जी, पूर्व विधायक श्री रामाश्रय राय (बच्चा बाबु), ई. कौशल किशोर सिंह (पप्पू जी सिवान) श्री चितरंजन प्रतिहस्त जी तथा डा0 भी0 सी0 झा जी आदि अनेकों मित्र वर्ग के प्रति आपन आभार प्रकट करत बानी जिनके प्रोत्साहन से हम श्री गीता भाव प्रकाश आज रऊआ लोगन के समक्ष उपस्थित कर सकनी।

फेर हम हाथ जोड़ के सब विद्वान , पाठक लोगन से निवेदन करत बानी जे हमरा अनुवाद के गलती पर ध्यान ना देके एकरा सुधार के पढ़ल जाई। हम विद्वान नईखी श्री कृष्ण भगवान के कृपा से उनके आदेशानुसार हम ई अनुवाद कर सकनी।

इति शुभम्

-उमेश झा

आचार्य डॉ0 जयमन्त मिश्र
एम. ए., पीएच.डी.,
व्याकरण–साहित्याचार्य,
राष्ट्रपति–पुरस्कार–सम्मानित
पूर्वकुलपति,
(कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय)
पूर्व वरीय विश्वविद्यालय–आचार्य एवम् अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर,
हनुमानगंज, मिश्रटोला, दरभंगा

Prof. Dr. Jayamanta Mishra
M.A., Ph. D.
VYAKARANA,SAHITYACHARYA
RECIPIENT OF PRESIDENT'S AWARD
EX-VICE CHANCELLOR
(K.S.D.S. University, Darbhanga)
Ex-Sr. Univ. Professor and Head,
Deptt. of Sanskrit,
Bihar University, Muzaffarpur
Hanumanganj, Mishratola,
Darbhanga-846 004

Date .....15-7-99.....

पद्मनाभ परमपुरूषोत्तम भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णके विशिष्ट उपदेशमय श्रीमद् भगवद्गीता भूमण्डलके साहित्य भण्डागारमें एक अमूल्य, अद्वितीय तथा अनुपम रत्न है। इसमें मुख्य दार्शनिक विचार,वैज्ञानिक सिद्धान्त, धार्मिकतत्त्व, नैतिक उपदेश, कर्तव्यमार्ग, कर्म–भक्ति–ज्ञान योग के स्वरूप एवं साधन सभी स्पष्ट प्रति पादित है। इसमें सांसारिक प्रेय और पारमार्थिक श्रेय प्राप्त करने का मार्ग निर्दिष्ट है। इसीलिए कहा गया है :–

" गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र–विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख–पद्माद विनिःसृता"

1. गीता 2. उपनिषद्, 3. ब्रह्मसूत्र इस प्रस्थान–त्रयी में गीता संक्षिप्त सार रूप होने के कारण अतिमहत्त्वपूर्ण है। साथ ही इसके पुष्पिका–वाक्य से स्पष्ट है कि गीता उपनिषद् है, ब्रह्मविद्या है एवं योगशास्त्र है। अत : यह अत्यन्त गूढ़ और रहस्यमय भी है। अतएव गीता तत्त्व को जानना अत्यन्त कठिन है। इसे तो भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन, महर्षिव्यास, ज्ञानी श्रीशुकदेव और स्वनाम धन्य मैथिल याज्ञवल्यक्य ही तत्त्वतः जानते हैं

"कच्चिज् जानाति वैकृष्णः कच्चिज्जानाति फाल्गुनः।
व्यासो वा व्यास–पुत्रोवा याज्ञवल्यक्योऽथ मैथिलः"

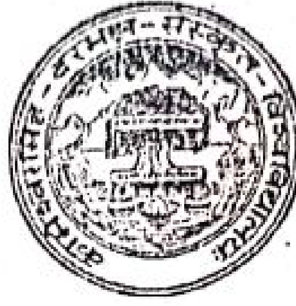
फिर भी भारत के सभी आचार्य, महात्मा, मनीषी विपश्चितों ने अपने–अपने मतानुसार गीता पर भाष्य, व्याख्या, टीकाओं की रचनाएँ की है। आज भी विश्व की विभिन्न भाषाओं में इसके अर्थ और अनुवाद किए जा रहे हैं जिनसे गीता की उपयोगिता, प्रासङ्गिकता तथा लोक–प्रियता प्रमाणित होती है।

इसी शृंखला में श्री उमेश झा का यह गीता का भोजपुरी भाषा में अनुवाद है। एक भाषा से दूसरी भाषा में मौलिक भावों को सुरक्षित रखते हुए रूपान्तरित करना कठिन काम है। इस कठिन काम को श्री झा ने सफलतापूर्वक सम्पन्न किया है। झा जी की मातृ–भाषा मैथिली है। अपने ननिहाल बेतिया में बहुत दिनों तक रहने के कारण इन्होंने भोजपुरी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया है, जिसका सदुपयोग इन्होंने गीता के इस पद्यानुवाद में भली भाँति किया है। इसके माध्यम से भोजपुरी भाषी, जिन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान नहीं भी है, गीता का अर्थ और महत्त्व समझ सकेंगे। इस सत्प्रयास के लिए अनुवादक श्री उमेश झा साधुवाद के पात्र हैं।

मुझे विश्वास है, सुधी पाठक समाज इससे पूर्ण लाभान्वित होगा। इतिशम्।

–जयमन्त मिश्र

काशीनाथ मिश्र
कुलपति
कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत
विश्वविद्यालय
दरभंगा (बिहार)





आवास - 22217
कार्यालय - 22014
फैक्स - 22217

पत्रांक ....
दिनांक ....5-8-99..............

पण्डित श्री उमेश झा, पत्रकार तथा स्वतन्त्रता सेनानी द्वारा भोजपुरी भाषा में अनूदित श्रीमद्भगवद्–गीता के अवलोकन का सौभाग्य आज मुझे प्राप्त हुआ। उक्त विश्वविदित धर्मग्रन्थ संसार में सर्वत्र समाहत है तथा भगवती सरस्वती के हार का ऐसा निरतिशय भास्कर मध्यमणि है जिसके आलोक में युग–युग से संसार–कान्तार में मार्गभ्रष्ट, दिङ्मूढ़ एवं हताश मानवता को सन्मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

भोजपुरी भाषा में छन्दोबद्ध नेपथ्य से अलंकृत उक्त ग्रन्थरत्न का प्रशंसनीय अनुवाद प्रस्तुत कर पण्डित श्री झा ने जहाँ एक ओर अपने पाण्डित्य की गम्भीरता से सुधीजनों को आकृष्ट किया है वहीं दूसरी ओर भोजपुरी–भाषी विशाल जन समूह के हाथों में जीवन को सफल बनाने का, कर्मसङ्कुल संसार में सदाचार पथ को आलोकित करने का तथा आत्मबल को समुद्दीप्त करने का एक दिव्य उपहार समर्पित किया है।

मुझे आशा ही नहीं विश्वास भी है कि प्रस्तुत अनुवाद भोजपुरी–भाषी समाज द्वारा आवेशपूर्वक समाहत होगा। ऐसी अनमोल रचना के लिए पण्डित श्री झा हम सभी के साधुवाद के सुपात्र हैं ।

–काशीनाथ मिश्र

शुभाशंसा

श्री मद्भगवगीता एक विलक्षण ग्रंथ अछि। अंगरेज लोऽनि जखन भारत वर्ष कें अपन अधिकार मे आनिरहल छलाह ओहि समय मे सर जॉर्ज विलकिन्स नामक एक अंगरेज अफसर कलकत्ता मे रहैत छलाह। ओ गीताक विशेषतासभ कें सुनलनि तऽ हुनक इच्छा भेलनि जे गीताक अंगरेजी मे अनुवाद करी। हुनका संस्कृत भाषाक ज्ञान नहि छलनि। कलकत्ता मे हुनकर संस्कृत पढ़वाक सुयोग नहि भेलनि। तखन ओ बनारस चल गेलाह ओ ओतय पंडित लोकनि सँ संस्कृत पढ़िकें एतबा योग्यता कऽ लेलनि जे संस्कृत सँ गीताक अनुवाद अंगरेजी मे कऽसकथि। ओ अन्ततोगत्वा गीता अनुवाद अंगरेजी भाषा मे 1785 ईस्वी मे कयलनि। वारेन हेस्टिंग्स जे बंगालक प्रथम गवर्नर जेनरल छलाह वैह एहि अनूदित ग्रन्थक प्राक्कलन लिखलनि। तिहियेसँ पाश्चात्य देश सभगीताक दिव्य संदेश सँ परिचित भेल।

हमरा ई जानि कें बड़ प्रसन्नता अछि जे डा0 श्री उमेश झा, स्वतंत्रता सेनानी एवं पत्रकार श्री मद्भगवगीताक भोजपुरी मे अनुवाद कयलानि अछि। श्री झा तँ मैथिल छथि आ मैथिली भाषी छथि मुदा हिनक मातृक बेतिया छनि आ ई बहुत समय मातृक मे बितौने छथि। भोजपुरी भाषाक प्रेमक कारणों ई गीता सन अमूल्य ग्रन्थक ओही भाषा मे छन्दोबद्ध कयलनि। हिनक भाषा मे प्रवाह छनि आछन्द मे भोजपुरी भाषाक ठेठ शब्द सभक प्रयोग कयल गेल अछि। हमर जनैत भोजपुरी भाषा मे गीताक ई पहिल अनुवाद अछि। भोजपुरी भाषा जननिहार कम्मो पढ़ल-लिखल लोक आब गीताक दिव्य संदेश सँ परिचित भऽ सकत।

डा0 झा गीताक अनुवाद द्वारा भोजपुरी समाजक बड़ उपकार कयने छथिन। हम डा0 झा के एहि कृतिक लेल साधुवाद दैत छियनि।

— डा० मदनेश्वर मिश्र

संस्थापक — कुलपति, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा 5.5.1999

MITHILA RESEARCH INSTITUTE, DARBHANGA

HUMAN RESOURCES DEVELOPMENT DEPARTMENT

(GOVT. OF BIHAR)

Ref.......

Offi
Phone : {24425
Resi

Dr. Shridhar Tripathi
Vyakarnacharya, Vedantacharya
Sahitya charya, Purana Shastri,
M. A. Dip in FD, Ph. D. D. Litt
Bihar Education Service- I, Director

श्रीमद्भगवद्गीता संसार के कालजयी ग्रन्थ के मुकुटमणि ह। कवनो भाषा के सम्पन्नता एह बात पर निर्भर करेला कि ओकरा में कालजयी ग्रन्थन के अनुवाद सुलभ बा कि ना। भोजपुरी भाषा के प्राणवता केहु से छिपल नइखे। एह भाषा अउर एकरा बोलेवालन के विशेषता समुझिये के ग्रीयर्सन साहब अपना " लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया" में "भोजपुरी इज द लैंग्वेज ऑफ द बिराइल" अहसन विचार व्यक्त कइले। श्रीमद्भगवद्गीता अइसन श्रेष्ठ दार्शनिक ग्रन्थ के भोजपुरी में अनुवाद क के डा0 उमेश झा ज़ी एह बात के बेजोड़ सबूत पेश क दिहली कि मिथिलांचल के मध्य हृदय क्षेत्र के वासी लोग भी भोजपुरी के सरसता के स्वाद के खूब समुझत बाड़न।

गीता संस्कृत भाषा में बा। ओकर अध्ययन मनन सबका खातिर सुगम नइखे। परसनता के बात बा कि स्वतन्त्रता सेनानी मिथिलांचल निवासी डा0 उमेश झा जी ओकर भोजपुरी – अनुवाद क के मिथिला के लोगन में भोजपुरी के प्रेम के उदाहरन राखि देहली। ओइसे त एकरा पहिले गीता के कई गो भोजपुरी अनुवाद भोजपुरिया भाई लोग प्रकाशित कइले बाड़न बाकी उ सब डा0 झा जी के काज नीयन अजूबा प्रयास ना कहल जाई।

अन्त में संक्षेप में हम इहे कहब– "बड़ बढ़िया, बड़ नीक, बड़ सुन्दर, बड़ रसगर, बड़ सहज , बड़ सुगम, उतरल बा राउ़र ई भगवद्गीता के व्याख्या भोजपुरी कविता में। एह रचिगर पद्यानुवाद के मजगर धार से गीता के गहन गुफा केबजर केवार तूरी तारि के रउरा गजब कमाल कइ देले बानी। एह मोका पर हमार हार्दिक बधाई स्वीकार करीं आ असहीं संस्कृत के अथाह सागर में से नीमन नीमन मूँगा मोती ढूँढ–काढि के, गढ़ि छीलि के भोजपुरी माई के आंचर में सजावल करीं। गीता के पहिल गवनिहार भगवान कृष्ण से हमार अरज बा कि रउरा के अइसन बढ़िया काम करे लायक बहुत दिन तक स्वस्थ अउर खुशहाल बनवले राखसु।

श्रीधर त्रिपाठी
निदेशक
मिथिला शोध संस्थान दरभंगा।

श्री मद्भगवद्गीता भारतीय सनातन संस्कृतिक ग्रन्थ आ प्रतिनिधि ग्रन्थ अछि। भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन मे तिलक, गाँधी, विनोबा प्रभृति महापुरूष एहि ग्रन्थ के माध्यम बनौलनि। विश्वक अनेक भाषा मे से हो एकर अनुवाद भेलैक आ ई सर्वमान्य विचार छैक जे ई बहुकाय ग्रन्थ प्रायः अतुलनीय अछि। भारतक विभिन्न भाषा मे से हो एकर अनुवाद भेलैक अछि, मुदा जतयधरि हमरा सूचना अछि भोजपुरी में एकर अभाव छल। श्री उमेश झा जी अपन बहुमुखी प्रतिभासँ एकर परिमार्जन कयलनि अछि। ओ सर्वतोभावेन प्रशंसाक पात्र छथि।

विगत कतोक कालसँ बिहार मे भाषाक नाम पर कहुखनकेँ जे विद्वेषात्मक लहरि उठैत रहैत अछि, तकरहु परिमार्जन मे ई प्रयास सफल कहल जाय सकैते अछि। मिथिलाक सुपुत्र भोजपुरीक जाहि, रूपें सेवा एहि ग्रन्थक माध्यम सँ कयलनि अछि से अनको लेल दृष्टान्त बनतैक।

हम भोजपुरी नहि जनैत छी, मुदा ई पोथी पढ़लासँ ओहि भाषाक सरल आ सर्वग्राह्य प्रेषणीयता सहजहि बुझना मे आबि गेल।

हमर कामना अछि जे स्वतन्त्रता सेनानी आ पत्रकार श्री उमेश झा जी स्वस्थ आ सक्षम बनल रहथु आ बहुतो वर्षधरी मैथिली भोजपुरी आ आनो भाषाक माध्यम सँ सारस्वत सेवा करैत रहथि।

डा० रत्नेश्वर मिश्र
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
इतिहास विभाग, 6.5.1999
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
दरभंगा ।

ॐ श्री परमात्मे नमः

अथ गीता महात्म्य प्रारम्भः

धारोवाच

भगवान परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी।
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो ।। 1 ।।

श्री विष्णुरूवाच

प्रारब्धं भुज्यमानो हि गीताभ्यासरतः सदा।
स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते ।।2 ।।

महापापादि पापानि गीताध्यानं करोति चेत।
कवचित्स्पर्शं न कुर्वन्ति नलिनीदलमम्बुवत् ।।3 ।।

गीतायाः पुस्तकं यत्र यत्र पाठः प्रवर्तते।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादि नि तत्र वै ।।4 ।।

सर्वे देवाश्च ऋषियो योगिनः पन्नगाश्च ये।
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्तते ।।5 ।।

यत्र गीता विचारश्च पठनं पाठनं श्रुतम्।
तत्राहं निश्चितं पृथ्वि निवसामि सदैव हिं ।।6 ।।

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीँल्लोकान्पालयाम्यहम् ।।7 ।।

गीता मे परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशय।
अर्धमात्राक्षरा नित्या स्वानिर्वाच्य पदात्मिका ।।8 ।।

चिदानन्देन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखातोऽर्जुनम्।
वेदत्रयी परमानन्दा तत्त्वार्थ ज्ञान संयुता ।।9 ।।

योऽष्टादश जपेन्नित्यं नरो निश्चल मानसः।
ज्ञान सिद्धिं स लभते ततो याति परम् पदम् ।।10 ।।

पाठेऽसमर्थः संपूर्णे ततोऽर्धं पाठमाचरेत्।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ।।11 ।।

त्रिभागं पठमानस्तु गंगा स्नान फलं लभेत्।
षडंशं जपमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ।।12 ।।

एकाध्याय तु यो नित्यं पठते भक्ति संयुतः।
रूद्रलोकमवाप्नोति गणो भूत्वा वसेच्चिरम्।।13।।
अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः।
स याति नरतां यावन्मन्वन्तरं वसुन्धरे।।14।।
गीतायाः श्लोक दशकं सप्त पंच चतुष्टयम।
द्वौ त्रीनेकं तदर्धं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः।।15।।
चन्द्रलोकमवाप्नोति वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
गीता पाठ समायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत।।16।।
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुत्तमाम।
गीतेत्युच्चार संयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत्।।17।।
गीतार्थश्रवणासक्तो महापापयुतोऽपि वा।
वैकुण्ठं समवाप्नोति विष्णुना सह मोदते।।18।।
गीतार्थं ध्यायते नित्यं कृत्वा कर्माणि भूरिशः।
जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहान्ते परमं पदम्।।19।।
गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः।
निर्धूतकल्मषा लोके गीता याताः परम पदम्।।20।।
गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत्।
वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम एव हयुदाहृतः।।21।।
एतन्माहात्म्य संयुक्त गीताभ्यासं करोति यः।
स तत्फलमवाप्नोति दुर्लभां गतिमाप्तुयात्।।22।।

सूत उवाच

महात्मयेतद्गीताया माया प्रोक्तं सनातनम्।
गीतान्ते च पठेध्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत्।।23।।

"अथ द्वितीय महात्मयम"

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान।
विष्णो पदम,वाप्नोति भयशोकादि वर्जितः।।1।।

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायाम परस्यच।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।2।।
मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने।
सकृदगीताम्भसि स्नानं संसार मल नाशनम्।।3।।
गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्नाभस्य मुख पद्माद्विनि सृता।।4।।
भारतामृत सर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम्।
गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।5।।
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधिर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।6।।
एकं शास्त्रं देवकी पुत्र गीतमेको देवो देवकी पुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।7।।

।। हरि ऊँ सत्सत् ।।

प्रमुख सहायक ग्रन्थ :-

1. श्री मद्भगवत गीता – महाभारत –गीता प्रेस
2. श्री मद्भगवत गीता – श्री जय दयाल गोयना –गीता प्रेस
3. शंकर भाष्य – श्री हरिकृष्ण दास गोयन्दका– गीता प्रेस
4. श्री भगवत गीता – डा0 सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्–सरस्वती विहार
5. मद्भगवत गीतारहस्य – बालगंगाधर तिलक–गीता प्रिंटर्स पुणे 30
6. मद्भगवत गीता – संत निवोबा भावे
7. गीता दर्पण – स्वामी राम सुख दास– गीता प्रेस
8. गीता तत्व विवेचनी हिन्दी –टीका –जयदयालगोयन्दका –गीता प्रेस
9. दास बोध – समर्थ राम दास अनुवादक श्री रामकुमार भारतीय
10. गीता प्रकाश – सर्व श्री लक्ष्मीनाथ गोसांई
11. गीता – मैथिली – श्री वेदा नन्द झा

ॐ अथ प्रथमोऽध्यायः

पहिलका अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच – धृतराष्ट्र पूछले।।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामका : पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ।।(1 । 1)।।

धरम जगहिया कुरुक्षेत्र जे,सब जुटले चाहत लड़ाई।
संजय हमार पाण्डुपुत, जे, का कइले मिलके भाई ।।1।।

।।संजय उवाच–संजय कहले।।

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वनचमब्रवीत् ।।(1। 2)।।

रचल व्युह पाण्डु सेनाके, जब देख सुयोधन लेहले।
नीयरे द्रोणाचार्य के जाके बात सुयोधन कहले।।2।।

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढ़ां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।। (1 ।3)।।

रउए चेला धीर द्रुपद पुत, ई व्युहाकार बनौले।
देखीं व्युह पाण्डु पुत के, बहुतो सैन्य मंगवौले ।।3।।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथ :।। (1 ।4)।।

एहमें वीर बाड़न धनुर्धर, देखीं, अर्जुन भीम समान।
द्रुपद विराट लड़ाकू सात्यकि, औरी महारथी परधान ।।4।।

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरूजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः।।(1 ।5)।।

धृष्टकेतु ओ केचितान जे, काशीराजा बा बलवीर।
कुन्तीभोज पुरुजित जे राजा श्रेष्ठ शैव्य राजा नरवीर ।।5।।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः।।(1।6)।।

सब महारथी, युद्धामन्यु जे, उत्तमौज बड़का बलशाली।
सुभद्रापुत अभिमन्यु साथ में, बाटे पाँचो पुत पंचाली ।।6।।

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ।।(1।7)।।

हमरा ओरी प्रधान वीर जे, समझीं रऊआ ब्राह्मण देव।
नायक के नाम कहबे अब, रऊआ जाने खातिर देव ।।7।।

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ।।(1।8)।।

रऊए भीष्म ओ कृपाचार्य जे, सब रन विजयो नित कामी।
कर्ण, विकर्ण , सोमदत्त पुत, औरी अश्वत्थाम बलधामी।। 8 ।।

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः।।(1।9)।।

जीवन आश तज बहु अईले, हमरा खातिर ऐह रन में।
बाड़े सबहि युद्ध में ज्ञानी, सब असतर कसले तन में ।।9।।

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्।।(1।10)।।

अगनित सेना हमरा ओरिया, रक्षक बाढ़े भीष्म प्रधान।
गनले सेना उनका ओरिया, भीमे रक्षक, जितले जान ।। 10।।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ।। (1।11)।।

एहसे अपना-अपना मोर्चा,अपने जगहा सब तैयार।
भीष्में के रक्षा में लागीं, सब ओर से बा, एकरे दरकार ।।11।।

तस्य संजनयन्हर्षं कुरूवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान्।।(1।12)।।

कौरव सबके बुढ़वा बाबा, दुर्योधन के देले हँसाय।
सिंहसूर में गरजे लगले, शंखो देले तुरत बजाय ।।12।।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।।(1।13)।।

तबे एके बेर बोले लागल, भेरी, शंख, ढोल, मृदंग।
जेकर भारी शब्द भयंकर, सून सब तबे भईले दंग ।।13।।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ।।(1।14)।।

तबे उजरा घोड़ा जोतल, ओह रथ बईठल श्याम।
अर्जुन साथे शंख बजौले सूनी, ओकर अलौकिक नाम ।।14।।

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः।(1।15)।।

देवदत्त के पार्थ बजौले,पांचजन्य घनश्याम।
फूंक पौण्ड्र महाशंख के, भीमो रखले आपन नाम।। 15।।

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ।।(1।16)।।

कुन्ती बेटा रजा युदिथष्ठिर। ऊ अनन्त विजय बजौले।
ले सुघोष ओ मणिपुष्पक के,नकुल सहदेव बजौले।। 16 ।।

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नोविराटश्च सात्यकिश्चापराजितः।।(1।17)।।

धनुधारी जे काशीराजा,महारथी ऊ शिखण्डी वीर।
घृष्टघ्युम्न, विराटराज जे, बाड़े अजय सात्यकि धीर।। 17 ।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक्।। (1।18)।।

द्रपुद, द्रौपदी पुत सब ऊहवां,राजा! औरी देश के वीर।
शंख बजौले अलगे–अलगे,महाबाहु अभिमन्युयो धीर।। 18 ।।

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन्।(1।19)।।

शबद सून, राउर पुत के,छाती गईल तभी चिराय।
सकल गगन तल गुंजे लागल,ना कोई सकल बचाय।।19।

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ।।(1।20)।।

अर्जुन देखले रण में आईल,धृतराष्ट्र के सब संतान।
तैयारी सब अस्त्र चलेके,धनु पर धईल आपन बान ।। 20 ।।

अर्जुन उवाच– अर्जुन कहले।

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरूभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।।(1। 21)

दुनू सेना बीच रथ हमरो, खाड़ा करीं हे पुनमान।
बड़ा दुःखी हो राजा अर्जुन,हाथ जोर कईले परनाम।। 21 ।।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे।।(1। 22)।।

जाले देखाब अपने आँखी,के अईले युद्ध कामे।
केकरा साथे युद्ध करे में, तोई योग्यता नामे ।।22।।

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः।।(1 ।23)।।

युद्ध करके, के सब उदयत,कौरव ओर मन राखा।
के तैयार युद्धले बाड़े, देखाबहमहुँ अपने आँख।।23।।

संजय उवाच – संजय कहले।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम्।। (1 ।24)।।

ई बतिया अर्जुन के सुनके, राजा सूनी ! कृष्ण भगवान।
दुन सैन्य बीच रथ उत्तम,केईले खड़ा तबहिं ओहथान।।24।।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान्कुरूनिति।।(1 ।25)।।

भीष्म, द्रोण प्रमुख राजा के,सन्मुख में रथ राखा।
कहले देखऽ आईल कौरव अरे! धनुर्धर, अपने आँख ।। 25 ।।

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितॄनथ पितामहान्
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा।।(1 ।26)।

देखलें अर्जुन पिता पितामह, ससुर, मित्र, भाई ओहठावँ।
नाती, पोता, बेटा, मामा, गुरुजन, हितजन, पूरा गावँ ।।26।।

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्।।(27)।।

दुनू सैनयके बीचे देखले, ससुर बन्धु सब ईयार।
उनको सबके देखत भईल, हृदय में शोक संचार । 27 ।।

।।अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले।।

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।।(28)।।

बोलले अर्जुन बात तबे तब, करूणा भरल भईल लाचार।
देखनी कृष्ण स्वजन बन्धुके, युद्ध हेतु सब खड़ा तैयार ।। 28 ।।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षऽश्च जायते।।(29)।।

शिथिल भईल, शरीर हमार अब, सुखल मुँह–जीऊ, ठोर।
छन–छन कम्पन तनमें होला, रोईं–रोईं में बाढ़े जोर ।। 29 ।।

गाण्डीवं संस्रते हस्तात्त्वकचैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।।(30)।।

गाण्डीयो धनु, गिरे हाथसे, जेर चाम अरू सगरो देह।
हम ना खड़ा रहे लायक अब, मन भरमें ओ घूमे देह ।। 30 ।।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे।।(31)।।

सब लछन उल्टे ज्ञात हो, रनके हे केशव घानश्याम।
स्वजन मारके नईखी देखत, होई सिद्ध कल्याणी काम ।। 31 ।।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा।।(32)।।

ना इच्छा रन विजय के माधो, ना मन सुख–सम्पद राज।
का होई अईसन भोगी जीवन, का होई कृष्ण ? ऊ राज्य ।। 32 ।।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च।।(33)।।

जिनका खातिर राजपाट बा, भोग औरी सुख जोह।
से सब खड़ा रण भूमि में, तज, धन, प्राण के मोह ।। 33 ।।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।।(34)।।

गुरू पितर ओ पुत पितामह, ससूर सार औरी परिवार।
बहुत समन्धी मामा पोता, अईले तजके सब घरद्वार ।। 34 ।।

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।।(35)।।

उनका मारेके इच्छा हम,कबहुँ नाहीं करेब घनश्याम।
धरती के बा बाते कवन, यदि मिल जाई तीनू धाम ।। 35 ।।

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः।।(36)।।

हमरा का होई खुसी प्रभुहे, भाई कुरू के सब संतान
ऐह अततायी के मरले, हमरो लागी पाप जहान ।। 36 ।।

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।।(37)।।

भाई हमार कौरव सब बाढ़े,हमहुँ अयोग्य करे विनाश।
अपने जनके मार कृष्ण हे, कईसे होई सुख आश ।। 37 ।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।।(38)।।

यदि ना देखले कौरव लोगनी,कुलनाशी ईहो संताप।
लोभी चित्त ना देखे कब्वो,मित्र द्रोह के जे बा पाप ।। 38 ।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।(39)।।

कुलनाशी जानकारो हमनी,ना कईनी दोषो विचार।
अबहुँ कृष्ण हटेके रस्ता,सोचीं बा एकरे दरकार ।। 39 ।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत।। (40)।।

कुलनाश से नाशे सनानत,सब वंशो धारम पुरान ।
वंशधर्म नष्ट जेह कुलके,ओकरे दाबे पाप जहान ।। 40 ।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः।।(41)।।

पापके बढ़ले कृष्ण ! कुलके, सब नारी कुलटा होई हें।
कुल नारी के कुलटा भईले, दोगला पुत उहो जनमइहें ।। 41 ।।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। (42)।।

दोगला घातक कुलके होला, कुलघाती जातक जनमा के।
गिरिहें पिसर लोग ओ कुलके, होई नष्ट पिण्ड सबहिं के ।। 42 ।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।।(1।43)।।

दोगला घातक कुलके होला, ऐह दोषे घनश्याम।
नष्ट पुराना जातिधर्म सब, कुलके बिगड़े आपन नाम ।। 43 ।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम।। (1। 44)।।

जे नरके उठजाला जग, कुलधर्म औरी अभिमान।
बसिहें नरक अनंन्त कृष्ण हे, सुननी हमहुँ शास्त्र पुरान ।। 44 ।।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः।।(1।45)।।

महापाप करे ख़ातिर जे, हमनी ओह ! भईनी तैयार।
जे करतीं राज सुख़ लोभे, अपने जन के अपने मार ।। 45 ।।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्।। (1।46)।।

अस़्त्र बिना हम बानी रन में, कौरव यदि बाड़े तैयार।
मारो जल्दी हमरा रन में, होई हमरो, कल्याणी कार । 46 ।।

।। संजय उवाच–संजय कहले।।

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोक संविग्नमानसः।।(1।47)।।

ई कह अर्जुन रण भुमि में, बईठले रथ मन हीन।
धानुषवान सब छोड़ समूचा, भईले अपने कांतर दीन ।। 47 ।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमदभगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ।।1 ।।

ऊँ इति गीता भाव प्रकाश ब्रह्मयोग विद्या शास्त्र विषय श्री कृष्ण अर्जुन
संवाद अर्जुन विषाद् योग नाम का पहिलका अध्याय समाप्त ।। 1 ।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः–हरि ॐ तत् सत्
अथद्वितीयोऽध्यायः

।। दुसर अध्याय ।।

संजय उवाच– संजय कहले ।।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।। (2 ।1) ।।

करूणा भरल देख कृपाकर,आँख में भरले उनका लोर।
शोकी अर्जुन के तब कहले,ई मधुसूदन ई वयन विभोर ।। 1 ।।

।। श्रीभगवानुवाच– भगवान कहले ।।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ।।(2) ।।

विषम जगहिया कौने कारण, तोहरा भईल ई अज्ञान।
ई ना गुरूजन कईनी कबहिं, ना स्वर्गो ना किर्ति जान ।। 2 ।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वययुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।। (2 ।3) ।।

ऐह घड़ी हिजड़ापन अर्जुन,तोहरों योग्य ना होई।
तुच्छ हिय के छोड़ दुर्बलता,लड़ऽ उठऽ, जे होई ।। 3 ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले ।।

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।(2 ।4) ।।

गुरूजन बाड़े भीष्म द्रोण जे,कइसे मारेब रन में बान।
रउए कहीं परम हित माधो ,दुनू पुजनियाँ बाड़े महान ।।4 ।।

गुरूनहत्वा हि महानुभवान्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहैवभुज्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ।।(2।5) ।।

गुरूजन मार राजपाट से,बा बढ़ियां भीख जहान।
अर्थ–कामले मारेब गुरूजन,सउनल लेहू भोग समान ।। 5 ।।

न चैतद्विद्व : कतरन्नो गरीयो–यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम–स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।।(2।6) ।।

हम ना जानी कवन ठीक बा, हम जितब या उनकर पार।
जेकरा मार जीत ना चाहीं,उहे कुरू सन्मुख तैयार ।। 6 ।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।(2।7) ।।

कायर मन बा धर्ममोह से,पुछीं निश्चित धरम हे तात
चेला जान कहीं हे माधो,हमरो खातिर ई शुभबात ।। 7 ।।
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धंराज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।(2।8) ।।

निष्कण्टक धन, राज्य इन्द्र पद,पवलो मन ना होई धीर।
दूर करी जे इन्द्रिये शोक्तो,नईखे लौकत ऐसन धीर ।। 8 ।।

।। संजय उवाच–संजय कहले ।।

एवमुक्त्वा हृषीकेश : गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।(2।9)

राजन ! अर्जुन कहले तबहीं,सूनी रउआ कृष्ण मुरार।
हमना युद्ध करेब एह रन में गुम्मे भइले भीन्न प्रकार ।। 9 ।।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।।(2।10)।।

राजन ! देख पार्थ के शोकी, रन में भईल बड़ा उदास।
कहले बात बिहुँसि के माधो, दुनू सेना बीचे प्रकाश ।।10।।

।। भगवानुवाच–भगवान कहले ।।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।(2।11)।।

अशोके शोक करेलऽ तुहूँ,कहऽ पण्डित वचन प्रमान।
जिन्दा मुर्दा शोक करे ना, से बाटे पण्डित विद्वान ।। 11 ।।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।(2।12)।।

पहिले हमनी, ना तूँ रहलऽ,ना रहे केहु राजा लोग।
आगे हमनी ना रहेब सँ, ई बतिया के जानऽ शोग ।। 12 ।।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। (2।13)।।

जइसे आत्मा देहे होखे,लड़िका, बुढ, औरी जवान।
वईसे दुसर देहिया पवले, ना मोहे धीरो विद्वान।। 13 ।।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।(2।14)।।

ठंढा गरमें सुख दुःख होला, विषय संयोगे येह शरीर।
छन–पल के ऊ सुख–दुःख अर्जुन,सहन करऽ तूँ भारत धीर ।। 14 ।।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।(2।15)।।

धीर पुरूष ना मोहे अर्जुन,सुख–दुःख जाने असार।
जे इन्दिय से शोके नाहीं,ओकरे बाटे मोक्ष अधिकार ।। 15 ।।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः।।(2।16)।।

असतके ना अस्तित्व ईहवाँ, सत्य के ना बाटे अभाव।
ई दुनू तत्व जे देखे,तत्व दर्शी, ज्ञानी, स्वभाव ।। 16 ।।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।(2।17)।।

ओकरा तूँ अविनाशी जानऽ,जेकरा से जग व्यापल भास।
ना समर्थ कोई भी बाड़े,कर सकिहें ओकर विनाश ।। 17 ।।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।(2।18)।।

अचल अमर आत्मा के ई, नाशवान कहल बा देह।
अप्रमेय, अविनाशी बुझके, युद्ध करऽ तज भारत नेह ।। 18 ।।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।(2।19)।।

जे समझे मरीहें ई आत्मा,मारेब हम ई सब लोग।
ई दुनू ऊ नाहीं समझे,मरे मारे ना एकरा लोग ।। 19 ।।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो–न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।(2।20)।।

ना जन्मे ना मरे ई आत्मा, ना होके ई फिर होखे।
अजन्मा नित्य, शाश्वत, पुरान बा,शरीर नाशो ना दोखे ।। 20

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।।(2।21)।।

एकरा जे जाने अविनाशी,अर्जुन, अजन्मा, नित्य पुरान।
मरबईहें कैसे केहु के,हरिहें केहु के कइसे प्रान ।। 21 ।।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा- न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।(2।22)।।

जइसे छोड़ पुरनका वसतर, नर पहिरें वस्त्र नवीन।
जिवात्मा वईसे छोड़ पुरना, दुसर पावे देह नवीन ।। 22 ।।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।। (2।23)।।

जरा ना सकिहें आगी आत्मा,ना गीला करिहें जलधार।
पवन सुखा ना एकरा सकिहें,ना काट सके; एकरा तरूआर ।। 23 ।।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।(2।24)।।

ई अशोष्य अच्छेद चीज बा, ई अदाहय अक्लेदय।
अचल नित्य व्यापक अनंन्त बा, धीर सनातन बाटे वेद ।। 24।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।(2।25)।।

आत्मा जे अव्यक्त-विषय बा, औरी अचिन्त, अविकार।
असल कहल जानके तुहुँ, उचित ना शोक विचार ।। 25 ।।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।।(2।26)।।

यदि तू मनब आत्मा नितदिन, जन्मे औरी मरे जहान।
तौभी ? शोक करेलऽ अर्जुन,ई नाहीं, उचित सुजान ।। 26 ।।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।(2।27)।।

जे जन्मी मुई जरूर जग मुअले होला जन्म जरूर।
बिन उपाय विषय में तुहुँ, ना ई उचित शोक करऽ दूर ।। 27 ।।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।(2।28)।।

जनम के पहिले मरन बाद में,सब भूतन बा देह विहीन।
सब शरीर, हऽ मध्यकाल में,तब अर्जुन का चिन्ते खिन्न ? ।। 28 ।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन–माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।(2।29)।।

केहु देखले अद्भूत बा आत्मा,केहु अद्भुत कहत बखनले।
केहु सुनले अदभुत बा ई,कोई असल रूप ना जनले ।। 29 ।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।(2।30)।।

नाशहीन ई आत्मा सब में, अवध्य बा, देह आधार।
एहसे सब प्राणी के खातिर,उचित ना शोक विचार ।। 30 ।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।(2।31)।।

आपन धरम देख के तुहुँ,ना ई उचित भय अज्ञान।
धर्मयुद्ध से बढ़के नाहीं, श्रेष्ट कर्म क्षत्रिय के जान ।। 31 ।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।(2।32)।।

खुलल आज बा अपने अर्जुन, सरग के कुल्ही दुआर।
भाग्यवान क्षत्री पावेले,अईसन रण व्यापार ।। 32 ।।

अथ चेत्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।(2।33)।।

यदि करब तूँ ना ई रन के,धर्म युद्ध के अर्जुन जान।
स्वधर्म कीर्ति सभी नशाई,पईब तुहूँ पाप जहान ।। 33 ।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति–र्मरणादतिरिच्यते।।(2।34)।।

क़थनी ई युग–युग रह जाई, सब कहिहें तोहरे इतिहास।
वीर पुरूष के मरनहऽ अच्छा, सुनले अपकीर्ति, उपहास।। 34 ।।

भया–द्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।(2।35)।।

भय से तुहूँ भगलऽ रन से,मनिहें सब महारथियों वीर।
जे माने तोहरा के योद्धा,बुझिहें तोहरो तुच्छ अधीर ।। 35 ।।

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।(2।36)।।

दुश्मन करिहें जोर के निन्दा, पढिहें सब मिल गारी।
एहसे बढ़ दुःख का बा अधिका,जानऽ अर्जुन जग संसारी ।। 36 ।।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।(2।37)।।

मुअले मिली स्वर्ग धनंजय,जितले भोगबऽ मेदनी राज।
उठऽ लड़ऽ निश्चय कर अर्जुन,बांध समरके आपन साज ।। 37 ।।

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय जुज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।। (2।38)।।

लाभ हानि ओ विजय–पराजय,सुख–दु:ख एक बराबर मान।
ना लागी तब पाप पार्थ हे,हरलऽ जल्दी दुश्मन प्राण ।। 38 ।।

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।(2।39)।।

कहनी सांख्य हम तोहरो ज्ञानले,कर्मयोग सुनऽ अबहीं।
जेकरा जान नष्ट तूँ करब,करम के बन्धन तबहीं ।। 39 ।।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्वायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।। (2।40)।।

निष्काम कर्म नाश ना होला,ना उलटा दोष करम के।
एकरा थोड़को साधन कईले, भय तारे जनम मरन के ।। 40 ।।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरूनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।(41)।।

निश्चयी बुद्धि बा एके,अर्जुन बा कल्याणी काम।
बहुशाखा अनंन्त भेद जे,अज्ञानी के बुद्धि सकाम ।। 41 ।।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।(2।42)।।

स्वर्ग जायके करे कामना,अर्जुन काम लिप्त अज्ञान।
स्वर्ग से बढ़के नाहीं माने,औरी कुछ कह नाहीं जान ।। 42 ।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।(2।43)।।

कामत्मा कर्मफल पवले,जग में रखाले स्वर्ग आश।
भोग कामके खातिर बोले, अति सुन्दर वचन प्रकाश ।। 43 ।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।(2।44)।।

ओह से हारल मनबा लागल,जग में हरदम भोग विलाश।
ना मन निश्चित ना होई बुद्धि ,योग बुद्धि के तनिक आभास ।। 44 ।।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।(2।45)।।

तीन गुण विषय वेदो कहले,तीनगुन नाश करऽ पार्थ।
निर्द्वन्दी बन योग–क्षेम तज,आत्मवान बन करऽ प्रमार्थ ।। 45 ।।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।(2।46)।।

जइसे भरल जलाशय पवले,कोई भरे न गड़हा पानी।
वइसे ब्रह्म विद्या के पवले,वेद ना माने ब्राह्मण ज्ञानी ।।46 ।।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।(2 ।47)।।

कर्म करेके अधिकारी तूँ,ना हो कबहुँ फलके आश।
तोहरो प्रिति बाढ़े ना कबहुँ,आसक्ति, निष्कर्मी साथ ।। 47 ।।

योगस्थः कुरू कर्माणि संङ्:गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।(2 । 48)।।

योगाधिन हो करऽ कर्म तूँ,तजऽ धानंजय अबे सान।
सिद्धि–आसिद्धि एके बराबर,समत्व योग कहेला जान ।। 48 ।।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंन्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।(2 । 49)।।

बुद्धि योग से जानऽ अर्जुन,बा नीच, करम सकाम।
आशा बुद्धि निर्धन जानऽ,गइऽ तूँ बुद्धि, निःकाम ।। 49 ।।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।(2 । 50)।।

बुद्धियोग से छोड़ कर्म फल,हो सुकर्म बा होखे नीच।
चेष्टा करऽ समत्व योग के,कर्म कौशल चतुराई हित ।। 50 ।।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।(2 । 51)।।

तजले बुद्धियोग कर्मफल,जे बोडे मनिष विद्वान।
जनम–मरन के बन्धन छुटके,पावे परमपद स्थान ।। 51 ।।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।(2 । 52)।।

जब मन दलदल मोह कर्म के, तोहरो करिहें अपने पार।
तब तूँ सुनल–सुनावल सुनके,पईब वैरागो के सार ।। 52 ।।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।(2 । 53)।।

जब तोहार मन शास्त्रे चंचल,स्थिर बुद्धि, योगे जोह।
समाधिये चित्त अचल रहे जब,तब पाई ऊ, योग के टोह।।53 ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पुछले ।।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।(2 । 54)।।

का लक्षण बा समाधि धईलके,के अहथीर बाड़े भगवान।
कइसे बईठे, चलें बोले का, जिनकर बाटे अहथीर नाम ।। 54 ।।

।। श्रीभगवानुवाच–श्री भगवान कहले ।।

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।(2 । 55)।।

जब तजले मनकाम धानुर्धर,मनगत सकलो मनकाम।
आत्मा रहे आत्म संतुष्टी,उनके कहलबा अहथीर नाम ।। 55 ।।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरूच्यते।।(2 । 56)।।

ना उद्विग्न कबहुँ दुःख से,सुख के इच्छा बितल आश।
जितल राग भय क्रोध जे,अहथीर मुनि उहे कहास ।। 56 ।।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(2 । 57)।।

स्नेह रहित जे वाड़े सबमें,निमन–बाउर सब पवले।
ना प्रसन्न ना रागो कबहुँ, अहथीर उनकर बुद्धि कहाले ।। 57 ।।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(2 । 58)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।(2 । 64)।।

इन्द्रिय विषय के वशमें कइले,राग द्वेष से बाड़े भीन्न।
विषया के वश कइले भोगे,निर्मल सुख आनंन्द हो लीन ।। 64 ।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।(2 । 65)।।

निर्मल भइले होला तबहीं,छनमें सकल दुःख के नाश।
प्रसन्नचित्त मनुष के छन में,स्थिर होला बुद्धि विकास ।। 65 ।।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।(2 । 66)।।

ना अयुक्ति के बुद्धि निर्मल,ना अयुक्त के होखे ज्ञान।
बिन असक्ति शान्त ना होई,शान्ति बिना का ? सुख धाम ।। 66 ।।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।(2 । 67)।।

इन्द्रिय साथे जब मनुष के,विचरत मनुआं करे बिहार।
जल में आँधी नाव के जइसे,वइसे ज्ञान हरण हो यार ।। 67 ।।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।(2 । 68)।।

एहसे जेकर वश इन्द्रियगण,अर्जुन छुटल विषय जहान।
इन्द्रिय, विषय वश जे कइले,ओकर स्थिर बुद्धि जान ।। 68 ।।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।(2 ।69)।।

जे रात सब भूतन खातिर,ओह में संयमी योगी जागे।
भूतन जागे जेह में इहवाँ,देख रात मुनि त्यागे।। 69।।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं –समुद्रपापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वेस शान्तिमाप्रोति न कामकामी।।(2।70)।।

जइसे समा जाए जल नदिया,भरल अचल समुन्दर बीच।
ओइसे भोगो समा जाय मुनि,पावे शान्ति ना पावे नीच ।। 70 ।।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्रचरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।।(2 । 71)।।

जे नर सब काम मोह तज,ममता तज विषय संसार।
उहे शान्ति पावेले ज्ञानी,जब छोड़िहें ऊ हुँकार ।। 71 ।।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।(2 । 72)।।

ई स्थिति हऽ ब्रह्म प्राप्त के,पवले एकरा ना मन मोह।
अन्तो निष्ठा करिहें अर्जुन,पइहें ब्रह्मानंद के टोह ।। 72 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।। 2 ।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र विषय श्री कृष्ण अर्जुन संवाद सांख्ययोग नाम के दुसर अध्याय समाप्त ।। 2।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

।।अर्जुन उवाच – अर्जुन पुछले।।

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।(3।1)।।

यदि ज्ञान श्रेष्ठ बा कर्म से, रउआ बा यदि इहे मान।
तब काहे ई कर्म भयंकर, करे लगाईं हे भगवान।। 1 ।।

त्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।।(3 ।2)।।

खिचड़ी बात बोल के रऊआ, भरमौंनी मन बुद्धि मोर।
एके रस्ता कहीं निश्चित जे, जेहमें होखे मंगल मोर।। 2 ।।

।।श्री भगवानुवाच– श्री भगवान कहले।।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।(3 । 3)।।

ऐह दुनियाँ में हमहीं दुनू ? निष्ठा पहिले कहनी पार्थ।
ज्ञानीजन के ज्ञान योग के, कर्मयोग योगी निस्वार्थ।। 3 ।।

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरूषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।(3 । 4)।।

ना कइले कर्म जगत के, ना त्यागे होइहें निष्काम।
ना त्याग जगकर्म से कोई, पइहें असली सिद्धि के धाम ।। 4 ।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जात्‌तु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः।।(3 । 5)

ना रहिहें कोई एको पलभी, बिना कर्म करत संसार।
सब परवस नियतिके गुण से, करले ओकरे अढ़ावल कार।। 5 ।।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।(3 । 6)।।

कर्म इन्द्रिये बंधले जे नर, भोग समाईल बा मन में।
विषय वासना मने चिन्तना, झूठ कहावेला से जग में।। 6 ।।

यास्त्विन्द्रियाणि ' मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते।।(3 । 7)।।

मन से जे वश कइले इन्द्रिये, अनासक्त बन कर्म में पार्थ।
कर्मेन्द्रिय से कर्मयोग के, करे आचरण श्रेष्ट यथार्थ।। 7 ।।

नियतं कुरू कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः।।(3 ।8)।।

नियत कर्म स्वधर्म करऽ तूँ, बा कर्म श्रेष्ठ जीवन में।
निकम्बा भईल से ना होई, गुजर जीवन–यापन में ।। 8 ।।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।। (3 ।9)।।

यज्ञकर्म के छोड़ , बा दुसर, सब कर्म, बन्धन मानुसके।
एइसे अनासक्त बन अर्जुन, सब कर्म करऽ ईश्वर के ।। 9।।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। 3 ।10) ।।

रचले प्रजा प्रजापति जब, आदिये साथे यज्ञ प्रधान।
एकरे से वृद्धि सब होई, कहले ! पुरिहें सब मनकाम।। 10 ।।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।। (3 ।11) ।।

यज्ञ से उन्नति करऽ देवता के, करिहें ऊ तोहरो कल्याण।
आपस से मिल मंगल बंटब, पईब तब्बे परम कल्याण।। 11 ।।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।(3 ।12)।।

इष्टभोग देवता सब दिहें, यज्ञ से मिलल परम महान।
जेना देव चढ़ावल खा लेऽ, निश्चय उहों चोरे जाने।। 12 ।।.

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुन्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (3 ।13) ।।

यज्ञ बचल अन्न खायजे, शाधु, पाप मुक्त हो जाय।
जे पापी निज पेटे पाके, से पापी सब पापे खाय ।। 13।।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।(3 ।14)।।

प्रानी अन्न से , अन्न वृष्टि से, वृष्टि यज्ञसे, उत्पन्न पार्थ।
यज्ञ होई जग कर्म करे से, यज्ञे उपजे कर्म यथार्थ ।। 14 ।।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षारसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।(3 ।15)।।

कर्म वेद से उपजल जानऽ, वेदो उपजल ब्रह्म प्रधान।
एहसे यज्ञ भूमि में पईब, सर्वव्यापी व्यापल भगवान।।15।।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।(3 ।16)।।

जे ना चले ई चलता चक्कर, अर्जुन तज के शास्त्र विधान।
इन्द्रिये सुख भोग में लागल, पापी जिअत व्यर्थ महान ।। 16 ।।

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते।। (3 ।17)।।

जे आत्मा में रमले रहे, आत्मे में रहले आनन्द।
आत्मे में सन्तुष्ट रहे जे, से योगी बा, कर्म स्वच्छन्द।। 17 ।।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः।।(18)।।

नईखो उनका कोई परोजन, करीं कर्म, अकर्म यथार्थ।
औरी सब भूतन में नईखे, तनिको उनका आपन स्वार्थ ।। 18 ।।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरूषः।।(3।19)।।

एहसे अनासक्त बन हरदम, करऽ कर्म जे बा कर्तव्य।
अनासक्त बन करे कर्म जे, कर्म करत पावे अव्यक्त ।। 19 ।।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।। (3।20)।।

कर्म करत जग जनक महात्मा, पवले परम सिद्धि महान।
एहसे लोक संग्रह देखत, कर्म करेके योग्ये जान ।। 20 ।।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।(3।21)।।

गुरूजन लोगनि कईनी पहिले, जे उनकर बाटे व्यवहार।
ओकरे रस्ता मान सकल नर, विचरेला ओकरे अनुसार ।। 21 ।।

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि।।(3।22)।।

अर्जुन तीन लोक में नइखो, कोई काम हमरा के ।
कोई चीज अप्राप्त भी नइखे, तौभी काम करीं जगवा के ।। 22 ।।

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।।(3।23)।।

यदि हम कर्म करेब ना इहवाँ, सावधान हो पार्थ संसार।
सभे लोगवा नकल उतरिहें, ना करिहें तनिको संचार ।। 23 ।।

उत्सीदेयुरिमेलोकानकुर्या, कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः।।(3।24)।।

यदि हम कर्म करेब ना जग, सब लोग नष्ट हो जाई।
दोगला कारक कर्त्ता मानी, सब प्रजा नष्ट हो जाई ।। 24 ।।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम्।।(3।25)

जइसे कर्म करेले अर्जुन, आसक्तिजन, सब अज्ञान।
वइसे कर्म करेले, ज्ञानी, चाहत लोकहित कल्यान ।। 25 ।।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।। (3।26)

ज्ञानी के ना चाहीं कबहुँ, जे बागड़ के भरमावे।
अपने ज्ञानी कार करे जे, ओकरो से करवावे।। 26 ।।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।(3।27)

प्रकृति गुणे कर्म सब होला, मोहित नर ना माने।
हमहीं कर्ताबानी जगत के, अहंकार वश इहे भाने।। 27 ।।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।।(3।28)।।

गुण तत्व के जे विद् बाड़े, अर्जुन तत्वज्ञानी विद्वान।
गुण में गुण वर्तेजान के, ना होखस आसक्ति जहान।। 28 ।।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढा सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्।।(3।29)।।

जे मोहित जगतीके गुण से, आसक्त गुणकर्में प्राणी।
उनको ना विचलावे कबहुँ, जेबा असली आत्मो ज्ञानी ।। 29 ।।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।(3 । 30)।।

हमरे में सब कर्म सौंप के, आशा ममता होके हीन।
उत्साही हो शोक रहित बन, करऽ युद्ध अर्जुनं प्रवीन।। 30 ।।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः(3।31)।।

जे नर हमरो मत से चलिहें, नित दोष, त्याग श्रद्धा से।
उनको छुट जाई दुनियां के, सब कर्म भंवर चक्कर से।। 31 ।।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः।।(3।32)।।

जे आन्हर ना चले मोर मत, बा मोहित चित्त अज्ञानी।
उनको ज्ञान नष्ट तूँ जानऽ, करिहें नाहीं, काम कल्याणी।। 32 ।।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।।(3।33)।।

सब प्रकृति गुने चलेला, चाहे ज्ञानवान विद्वान।
अपने गुण से चेष्टा करेला, का हठ करिहें कोई विद्वान।। 33 ।।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ।।(3।34)।।

इन्द्रिय भीतर राग द्वेष बा, दुनू ना वश में, आवे।
मंगल राहे विघ्न करेला, कल्याण कर्म के शत्रु कहावे।। 34 ।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।(3 । 35)।।

दोसर धरम निगुण, निमनो यदि, आपन उत्तम धर्मो जान।
आपन धरम मरन बा अच्छा, दोसर धरम, भय, अज्ञान।। 35 ।।

।। अर्जुन उवाच—अर्जुन पुछले ।।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरूषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः(3 । 36)।।

बृष्णावंशी कइसे बरजोरी, ना चहलो पर करे अर्कम।
के उनका के प्रेरित करे, कइसे करे पाप कुकर्म।। 36 ।।

।।श्रीभगवानुवाच— श्री भगवान कहले।।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।(3 ।37)।।

काम क्रोध जे रजसे उपजल, महाभोगी, भुखड़ अवतार।
एकरा तूँ वैरियें बुझऽ, ई बा बड़का पापी ईयार।। 37 ।।

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।(3 । 38)।।

धुआँ जइसे आगे के झंपले, दर्पण झंपल मईल से।
जईसे गर्भ झार झंपाईल, बा ज्ञान झंपाईल कामे।।38।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।। (3 । 39)।।

इन्दिय भीतर राग द्वेष बा, दुनू ना वश में, आवे।
मंगल राहे विघ्न करेला, कल्याण कर्म के शत्रु कहावे।। 34 ।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।(3 । 35)।।

दोसर धरम निगुण, निमनो यदि, आपन उत्तम धर्मो जान।
आपन धरम मरन बा अच्छा, दोसर धरम, भय, अज्ञान।। 35 ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पुछले ।।

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरूषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः(3 । 36)।।

बृष्णावंशी कइसे बरजोरी, ना चहलो पर करे अर्कम।
के उनका के प्रेरित करे, कइसे करे पाप कुकर्म।। 36 ।।

।।श्रीभगवानुवाच– श्री भगवान कहले।।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।(3 ।37)।।

काम क्रोध जे रजसे उपजल, महाभोगी, भुखड़ अवतार।
एकरा तूँ वैरियें बुझऽ, ई बा बड़का पापी ईयार।। 37 ।।

धूमेनाव्रियते वह्रिर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्।।(3 । 38)।।
धुआँ जइसे आगे के झंपले, दर्पण झंपल मईल से।
जईसे गर्भ झार झंपाईल, बा ज्ञान झंपाईल कामे।।38।।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च।। (3 । 39)।।

कामरूप वैरी ज्ञानी के, अर्जुन झाँपे ज्ञान प्रकाश।
भूखड़ आगी ऐसन निते, झांपे, ज्ञानी, बुद्धि विकास।। 39 ।।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।। (3 । 40)।।

इन्द्रिये, मन, बुद्धि, कामधार, एकरे से झांपेला ज्ञान।
एहसे मोहित हो देहीजन, विसरे आपन ज्ञान महान।। 40 ।।

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्।। (3 । 41)।।

एहसे पहिले वश करऽ इन्द्रिये, अर्जुन काम जगत के।
ज्ञान विज्ञान नष्ट करेजे, मारऽ पापी, दुश्मन के।। 41 ।।

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।(3 ।42)।।

इन्द्रिय श्रेष्ट कहेला मन के, मन उपर बा बुद्धि विधान।
बुद्धि से उपर ओकरा जानऽ, जे बा आत्मा परम महान।। 42।।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। (3 ।43)।।

बुद्धि से उपर जानके आत्मा, बुद्धि से मन वश करके।
विजय करऽ तूँ दुर्जय अर्जुन मारऽ काम शत्रु समझके ।। 43 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।। 3।।

इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्यायोग शास्त्र श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद
कर्मयोग नामका तेसर अध्याय समाप्त ।

।।अथ चतुर्थोऽध्यायः –चौथा अध्याय।।

श्री भगवानुवाच– श्री भगवान कहले।।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।। (4 ।1) ।।

सूर्यो के हम कइले रहनी, आदिये ई अविनाशी योग।
आपन बेटा मनुके कहले, मनु कहले इक्ष्वाकु सुयोग्य।। 1 ।।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।।(4 ।2) ।।

एहसे परा––पारी पवले, राजर्षि विद् सकल समाज।
अर्जुन बहुत समय बितलासे, लोप भईल बा उहो आज ।। 2 ।।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।(4 ।3) ।।

उहे पुरनका योग आज हम, अर्जुन, तोहरा हित बतलौनीं।
भक्त सखा दुनू तूँ बाड़ऽ, उत्तम रहस्य दोहरौनी।। 3 ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पुछले ।।

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ।।(4 ।4) ।।

राउर जनम आज भईलबा, सुर्या जनम आदि पुरान।
कइसे समझीं रउए कहनी, पहिले आदि काल भगवान।। 4 ।।

।।श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।(4 ।5)।।

हमार तोहार बहुतो बितलबा, अर्जुन जनम, ऐह जग में।
हम एकरा के जानत बानी, तूँ अनजान भरम में ।। 5 ।।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।(4 ।6)।।

हम अविनाशी और अजन्मा, रहलो पर सबके भगवान।
वश में नियति के कईले हम, प्रकट योगमाया से जान।। 6. ।।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।(4 ।7)।।

जब जब धरम घटे धरती पर, बाढ़े पाप सकल जहान।
तब तब रूप रचिले अर्जुन, प्रकट योगमाया से जान।। 7 ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।(4 ।8)।।

साधु उबारन, दुष्ट के मारन, हमरो होला जग अवतार।
धर्म स्थापन करे के खातिर, युग युग जनम लीं संसार ।। 8 ।।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।।(4 ।9)।।

दिव्य हमार जनम करम बा, जे जाने ई तत्वो बात।
त्याग देह से हमरे पावे, फेर जनम ना जन्मे तात।। 9 ।।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।।(4 ।10)।।

छोड़ राग भय क्रोध सभी के, अइले मनसे शरण हमार।
ज्ञान तपस्या से पवित्र हो, बहुतो पवले रूप हमार ।। 10 ।।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।(4 ।11) ।।

जे हमरा जइसे भजिले, वइसे भजीं हम उनकाके।
ज्ञानी चले सब प्रकार से, अर्जुन धर हमरो रस्ता के।। 11 ।।

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।(4 ।12) ।।

मानुष चाह राखा कर्मफल, पूजे दुसर देव महान।
पावे सिद्धि तुरत ऊ प्रानी, कर्म उपज बाटे परमान ।। 12 ।।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ।।(4 ।13) ।।

चारो जात के हमहीं रचनी, बंटनी उनके गुणसे कर्म।
एहसे कर्त्ता ना जानऽ तूँ, हम अविनाशी, जानऽ अकर्म ।। 13 ।।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।।(4 ।14) ।।

ना लपटावे कर्मों हमरा, ना कर्म फलन के चाव।
जे हमार ई तत्व के जाने, ना बाँधे से कर्म के भाव ।। 14 ।।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरू कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ।। (4 ।15) ।।

पहिले भईले ज्ञानीजन जे, कइले जान, सबकर्म जहान।
पुरखा तोहरो सदा जे कइले, करऽ कर्म होई जग सान ।। 15 ।।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। (4।16)।।

का बा कर्म, का अकर्म बा, एहसे मोहित बा विद्वान।
कहेब तोहरो कर्म तत्व के, जनले छुटी अशुभ महान।। 16 ।।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः।। (4।17)।।

का बा रूप कर्म, अकर्म के, का निषिद्ध बा चाहीं ज्ञान।
करम के गतिबा, गहन धनुर्धर, एकरा के जनिह परमान।। 17 ।।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।(4।18)।।

कर्में अकर्म जे देखोला, अकर्मों देखो कर्में काम।
से ज्ञानी मानुष में बाड़े, कर्मकरत अकर्म निष्काम।। 18 ।।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। (4।19)।।

ज्ञान अग्नि से जरलबा जेकर, काम संकल्प सकल विहाय।
ओकरे पण्डित कहे ज्ञानी जन, औरी सकल विद समुदाय।। 19 ।।

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किन्चित्करोति सः।। (4। 20)।।
तृप्त सदा ईश्वर में बाड़े, तजले कर्म फलन निःआश।
काम करत ना करेले कुछऊ, ना होखस ऊ कबहुँ उदास।। 20।।

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिगहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। (4।21)।।

आश रहित चित्त, आत्मा जितल,तेजले सकल भोग समान।
आपन तन हित काम करे जे, ना पावे ऊ पाप जहान ।। 21 ।।

यदृच्छालाभसन्तुष्टोद्वन्द्वातीतो विमत्सर :।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते।। (4 ।22)।।

अपने आपजे चिज मिलेला, द्वन्द ना ममता साथे।
सिद्धि–असिद्धि एकेजे माने, कर्म करत ना बाँधे ।। 22 ।।

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।। (4 ।23)।।

आसक्ति गत, मुक्त मनुषजे, ज्ञाने स्थित यज्ञ आचार।
उनके कर्म नष्ट सब होला, केवल ज्ञाने बाटे आधार।। ।23।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना।। (4 ।24)।।

अर्पण ब्रह्म , हविः हऽ ब्राह्महिं, कर्त्ता ब्रह्म, हवन महान।
ब्रह्मकर्म समाधि में लागल, उनके ब्रह्म प्राप्त हो जान।। 24 ।।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्राह्मग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति।। (4 ।25)।।

दुसरे योगी, देव उपसले, उनके यज्ञ सदा धियान।
दुसर ज्ञानी ब्रह्मअग्नि में, हवन करीं, यज्ञ के जान।। 25 ।।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहवति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहवति।।(4 ।26)।।

श्रवण आदि सब इन्द्रिये केहु, देहले संयमाग्नि जराय।
केहु शब्द–विषय औरो के, देहले इन्द्रियाग्नि जराय।। 26 ।।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।। (4।27)।।

दुसर सब इन्द्रियेकर्म के, योगी प्राणकर्म व्यापार।
ज्ञानदीप ले संयमाग्नि में, सकल हवन करेले ईयार।। 27 ।।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः।। (4।28)।।

द्रव्य यज्ञ, तप, योग यज्ञ जे, दुसरो जे, यज्ञ, तप, दान।
संशिव्रत, स्वाध्याय–ज्ञानके यत्नी योगी, बाड़े महान ।।28।।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।।(4।29)।।

केहु प्राण अपान जरौले, केहु जारे प्राणे आपान।
केहु प्राणापान गति रोकले, प्रणायाम करे मतिमान।। 29 ।।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः।।(4।30)।।

नियत आहार खाय जे योगी, झोंकले आपन प्राण में प्रान।
यज्ञे भईल पाप नाश बा, सब यज्ञ जाने उनकर ज्ञान ।। 30 ।।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्यज्ञस्य कुतोऽन्य : कुरूसत्तम।। (4।31)।।

यज्ञ बचल अमृत भोग के, पावे, ब्रह्म सनातन जान।
यज्ञ बिना इहवों सुख नाहीं, कइसे अर्जुन उहवां जान।। 31 ।।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे।। (4।32)।।

एहसे बहुतो यज्ञ बखनले, वेदो मुखसे स्वयं भगवान।
कर्मे उपजल जान ज्ञान के, जनले पईब मोक्ष महान।। 32 ।।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वंकर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। (4।33)।।

द्रव्य यज्ञ से श्रेष्ट बा अर्जुन, ज्ञान यज्ञ दुनियां में।
सब समाप्त ज्ञान में होला, जानऽ तू अन्तो में।। 33 ।।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।। (4।34)।।

करऽ प्रणाम पुज पद गुरू के, सेवा भाव से पुछऽ बात।
तत्वदर्शी विद्वान ज्ञान के, कहिहें तोहरो तत्व विधान।। 34 ।।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।। (4।35)।।

जेकरा जान मोह ना होई, अर्जुन सेबा असली ज्ञान।
सब प्राणी आत्मे में देखबऽ, देखबऽ एके सब भगवान।। 35 ।।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि।। (4।36)।।

यदि तूँ बाड़ऽ बड़का पापी, सबसे अधिक बड़ा महान।
ज्ञान नाव से तरबऽ निश्चय, एहमें ना संदेहो जान ।। 36 ।।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। (4।37)।।

जइसे भसम करेला अर्जुन, लहरत आगी लकड़ी जान।
वइसे भसम करे सब कर्मो, अपने ज्ञान अग्नि महान ।। 37 ।।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।(4 ।38)।।

ना ज्ञान अस बा पवित्र जग, जे बा समत्वज्ञान महान।
बहुत काल में अपने आत्मा, पावे योगी समता ज्ञान ।। 38 ।।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। (4 ।39)।।

तत्पर हो जितेन्दिय पावे, श्रद्धावान ई परम ज्ञान।
पवले ज्ञान शान्त हो तुरते, पावे उत्तम ब्रह्म महान ।। 39 ।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।(4 ।40)।।

अज्ञ अश्रद्धा संशय मन में, संशय आत्मा करे विनाश।
ना पावे इहवों सुख कबहुँ, ना होला परलोको आश ।। 40 ।।

योगसन्नयस्तकर्माणं ज्ञानसछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबधन्ति धनंजय।।(4 ।41)।।

योग संन्यस्त कर्म करे जे, ज्ञाने संशय नष्ट हो जाय।
आत्मवान् बधिहें ना कबहुँ, कर्म फन्द जे बा नरराय।। 41 ।।

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। (4 ।42)।।

एहसे (अर्जुन समत्व बुद्धिसे, अज्ञाने उपजल, संशय ज्ञान।
छेछऽ संशय ज्ञान स्वर्ग से, अर्जुन उठऽ युद्ध मैदान ।। 42।।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्याय :।। 4 ।।

इति श्री गीताभाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद ज्ञानकर्म संन्यास योग नाम का चौथा अध्याय समाप्त।

ॐ श्री परमात्मने नमः

अथ पंचमोऽध्यायः—पाँचवां अध्याय

।। अर्जुन उवाच—अर्जुप पुछले ।।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।। (5 । 1) ।।

कहनी कृष्ण निःकाम योग के, फिर प्रशंसा कर्म सन्यास।
एह दुनू में जे कल्याणी, निश्चित एके कहीं विश्वास ।। 1 ।।

।। श्री भगवानुवाच—श्री भगवान कहले ।।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।। (5 । 2) ।।

कर्मयोग संन्यास कर्म जे, दुनू करे परम कल्याण।
लेकिन कर्म संन्यास योग से, निष्कर्मयोग बाटे परधान ।। 2 ।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्ध्यात्प्रमुच्यते ।। (5 ।3) ।।

ना राग, ना चाह बा कुछऊ, सदा संन्यासी ओकरे बुझ।
निर्द्वन्दित सुख पूर्वक अर्जुन, बन्धन काटे मुक्ति सुझ ।। 3 ।।

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।(5 ।4) ।।

बाल बुद्धि कह अलग—अलग बा, कर्म, संन्यास में बड़का भेद।
पण्डित माने दुनू एके, फल पावे जे ईश अभेद ।। 4 ।।

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति(5 |5)।।
ज्ञान यति जे पावे आसन, कर्म यति से पावे थान।
ज्ञान कर्म जे एके देखे, से ही देखे बड़ा महान।। 5 ।।

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।। (5 |6)।।

अर्जुन बिना निष्काम कर्म के, कठीन बा पावल संन्यास।
निष्कामी योगी पावेले, तुरते परम ब्रह्म प्रकाश ।। 6 ।।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।। (5। 7)।।

योग युक्ति, शुद्ध वश आत्मा, इन्द्रिये पर कइले अधिकार।
सब आत्मा के आत्मे बुझले, ना ओझरैले करितो कार।। 7 ।।

नैव किन्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्नश्नगच्छन्स्वपन्श्वसन्।। (5 |8)।।

ना कबहुँ कुछ कर्म करीं हम, योगी युक्ति तत्वी माने।
देखे, सुने, खाय, सुंघ के, सुते, चले, कर्म समाने ।। 8 ।।

प्रलपन्विसृजन्गृहृणन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।। (5। 9)।।

रोअत–बोलत, देत–लेत में, मिचत खोलत आँख स्वभाव।
इन्द्रिये सब लागल स्वभाव में, हम ना कुछ करिले चाव।। 9 ।।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मनपत्रमिवाम्भसा।। (5 |10)।।

ब्रह्मे में सब कर्म सौंपी के, आशा तज करि जे काम।
जल बीच कमल पत्रबा जइसे, नां लपटाई पाप जहान।। 10

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये।। (5।11)।

काया, मन, अरू, बुद्धि इन्द्रिये, करे कर्म, योगी निष्काम।
आत्मशुद्धि ले करे कर्म जे, त्यागे संग काम सकाम।। 11।।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।। (5।12)।।

जे युक्ति कर्म फल त्यागे, पावेला ऊ शान्ति महान।
सकामी बा फलके आशे, बान्हल माया उनके जान।। 12।।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन्।। (5।13)।।

सभे कर्म सन्यासे बुझके, वश में मन भईल आनन्द।
नवराही पुरई शरीर जे, रह स्थिर ना, कर्मे द्वन्द।। 13।।

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।। (5।14)।।

कर्ता कर्म जिऊ बिच जे, ना रचले एकरा भगवान।
ना कर्मफल संयोगो रचले, स्वभाव गुणे कर्म सब जान।। 14।।

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।(5।15)।।

धर्म–पाप केकरो के जग में, ना दे, ना, लेला, भगवान।
अज्ञाने झाँपल बा ज्ञाने, एहसे मोहित ज़िऊ जहान।। 15।।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्।।(5 । 16)।।

आत्मज्ञान से नाश बा जेकर, आत्मा के सम्पूर्ण अज्ञान।
सुर्य समान ज्ञान हो उनका, प्रकाशे ज्योति ब्रह्म समान।। 16 ।।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः।।(5 ।17)।।

ओह बुद्धि से आत्म कर्म के, निष्ठा कइले ब्रह्म में लीन।
फिर जनम ना जन्मे योगी, ज्ञाने होले पाप विहीन।। 17 ।।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।(5 ।18)।।

विद्या विनय भरल ब्रह्मण जे, गज–गईया बा एक समान।
कुत्ता ओ चाण्डाल जगत के, एके देखे, समदर्शी विद्वान।। 18 ।।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।निर्दोषं
हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।।(5 ।19)।।

सम बा बुद्धि जेकर जग में, जितले सृष्टि सकल महान।
निर्दोषी बन रहे ब्रह्म जस, उनके लीन ब्रह्म में जान।। 19 ।।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ।। (5 ।20)।।

ना हर्षित कुछ प्रिये के पवले, अप्रिय पवले नाहीं उदास।
स्थिर मन, संशय रहित जे, स्थित,ब्रह्म, ब्रह्म में भास ।। 20 ।।

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।।(5 ।21)।।

बाहरी सुख, आसक्ति तजले, आत्मे सुख पावे भगवान।
ब्रह्मयोग से अक्षय सुख के, योगी करिले नित अनुमान।। 21 ।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।।(5।22)।।

इन्द्रिय विषय संयोग भोग सब, दुःखदायक होला हे पार्थ।
आदि अन्त बा ओकर जानऽ, रमेले ना ज्ञानी, निस्वार्थ ।। 22 ।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।(5।23)।।

मरण के पहिले जे समर्थ नर, योगी सुखी युक्त संसार।
काम क्रोध से उपज वेग के, जितले से योगी सुखसार।। 23 ।।

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।। (5।24)।।

आत्म सुखी बा अन्तरात्मा, आत्मज्योति में नित आनन्द।
उहे शान्ति पावेले योगी, शान्ते पावे ब्रह्मानन्द ।। 24 ।।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।।(5।25)।।

कटल पाप, छिन्न मन संशय, सब प्राणी के हित कल्याण।
एक भाव से भजे ब्रह्म नित, पावे मुनि से ब्रह्म निर्वाण।। 25 ।।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।(5।26)।।

काम क्रोध से रहित जे योगी, वश में चित्त ब्रह्म में ध्यान।
से ज्ञानी के सब ओरी से, ब्रह्म निर्वाण शान्ति पद जान।। 26 ।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।(5।27)।।

बाहर-शब्द स्पर्श त्यागके, भौं बीच दृष्टि के धाईले।
प्राण– अपान , नाक बिहरी, पवन बराबर कईले ।। 27 ।।

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एवसः।।(5।28)।।

मन बुद्धि जितले मुनि इन्द्रिये, हरदम धरे मोक्ष के ध्यान।
इच्छा, भय, क्रोध मुक्त जे, बाड़े सदा मुक्त महान ।। 28 ।।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।(5।29)।।

जे हमरा के जाने- सर्वेश्वर, यज्ञ तपस्या भोगनिहार।
सबके प्रेमी जान तत्व से, पावे परम शान्ति आसार।। 29 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवदगीता सूपनिषदत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
कर्मसन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ।। 5 ।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग
शास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद कर्म संन्यास
योग नाम का पांचवा अध्याय समाप्त ।। 5 ।।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः—छठवाँ अध्याय ।।

।। श्रीभगवानुवाच —श्री भगवान कहले ।।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।(6।1)

फल इच्छा तज करे काम जे, से संन्यासी योगी जान।
त्यागे यज्ञ अग्नि त्यागे जे, ना योगी, अकर्मी मान।। 1 ।।

यं संन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्न्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।।(6।2)।।

जेकरे संन्यास कहेला अर्जुन, ओकरे योग तूँ बुझऽ।
ना संकल्प त्याग बिन कोई, होईहें योगी मानऽ ।। 2 ।।

आरूरूक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।(6।3)।।

योगारूढ़ जे चाह, मुमुक्षी, कहल बा उनकर कर्म निष्काम।
योगारूढ़ योगी के हेतु, कइले सब संकल्प बेकाम।। 3 ।।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।(6।4)।।

ना इन्द्रिये, भोगे आसक्ति, ना आसक्ति कर्मों में जान।
सब संकल्प त्याग संन्यासी, योगारूढ़ तब, कहे सुजान।। 4 ।।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव– ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।(6।5)।।

अपने आप उद्धरले आत्मा, अधगति में ना गिरके नाश।
आत्मा आपन मिते जानऽ, आत्मे शत्रु करे विनाश।। 5 ।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जित:।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।(6।6)।।

जे जितले आत्मा, मन आपन, उनके बा ई बन्धु समान।
जे ना मन आत्मा, के जितले, उनके आत्मा शत्रु महान।। 6 ।।

जितात्मन: प्रशान्तस्य परमात्मा समाहित:।
शीतोष्णसुखदु:खेषु तथा मानापमानयो:।। (6।7)।।

मन अतिशान्त जीतलबा आत्मा, हरदम लागल परम धियान।
सर्दी गर्मी सुख–दु:ख उनका, आदर अनादर एक समान।। 7 ।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचन:।। (6।8)।।

जीतले इन्द्रिये तृप्त ज्ञान में, तजले बा जे सकल विकार।
सोना–माटी एके माने, कहेला योगी युक्ति यार।। 8 ।।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।। (6। 9)।।

हित, मित, पंच औरो वैरी, उदासीन सब बन्धु समान।
धर्मी पापी एके मनले, समबुद्धि अति श्रेष्ट महान।। 9 ।।

योगी युज्जीत सततमात्मानं रहसि स्थित:।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रह:।।(6।10)।।

रहित वासना, मन चित्त जितले, संग्रह रहित संत अकेले।
निर्जन थल में थीर रह हरदम, ध्यान आत्म मन धइले।। 10 ।।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मन:।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।।(6।11)।।

पवित्र भूमि में अस्थिर आसन, ना अति ऊँच ना नीच।
कुशासन मृगछाला वसतर, स्थिर होके ओकर बीच।। 11 ।।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये।।(6।12)।।

ओह पर आसन मार बईठके, वश में इन्द्रिये मन कर एक।
आत्मशुद्धि ले ध्यान लगावे, योगाभ्यासे आत्म विवेक ।। 12 ।।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।संप्रेक्ष्य–
नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।(6।13)।।

काया सिरके एक बराबर, ग्रीवा स्थिर एक समान।
आपन नाक अग्रके देखे, ना देखे ऊ दुसर थान ।। 13 ।।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनःसंयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः।।(6।14)।।

शान्त हृदय डर भागल आत्मा, ब्रह्मचर्य व्रत हो समाधान।
मनके वश में कएके युक्ति, हमरे स्थित धएके ध्यान ।। 14 ।।

युन्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।।(6।15)।।

मन अधिन ईश्वर में थोपले, योगी करे नित्य प्रयास।
हमरे परम आनंन्द रूप ऊ, पावे महाशान्ति प्रकाश ।। 15 ।।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।(6।16)।।

खाऊकारो ना होइहें योगी, ना योगी होईहें उपवासी।
ना सुतनवां जानऽ अर्जुन, ना जगले होई संन्यासी।। 16 ।।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।(6।17)।।

जगुत आहार–विहार जुगुत बा, जगुत बा जिनकर चेष्टा कर्म।
जुगुत भाव से सुते जागे, दुःखहर योग के सिद्धिधर्म।। 17 ।।

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा।।(6।18)।।

वशीभूत चित्त स्थिर हो जब, परमात्मा में होला लीन।
रहित कामना जे निर्लोभी, योग युक्त ऐसन प्रवीन।। 18 ।।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः।।(6।19)।।

जइसे अचल जरे दियरिया, जइवाँ नाहीं जाए वियार।
योगयुक्त योगीके वईसे, जीतल चित्त, कहल बा यार।। 19 ।।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।(6।20)।।

जब उपराम चित्त योग से, रोकिहें करत, योग अभ्यास।
आत्मे में परमात्मा देखत, हो संतुष्टि, साक्षात प्रकाश ।। 20 ।।

सुखमात्यन्तिकं यत्ताद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।(6।21)।।

इन्द्रियातित जे सुख बाटे, बुद्धिये ग्रहण हो आनन्द।
ना चंचल, स्थिर रह ज्ञाने, योगी देखतो ब्रह्मानानंन्द।। 21 ।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरूणापि विचाल्यते।।(6।22)।।

जेकरा ब्रह्म प्रकाश प्राप्त हो, ना माने ऊ दुसर लाभ।
ओह रूप में स्थिर योगी, भारी दुःख में नाहीं उदास।। 22 ।।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चियेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।(6।23)।।

दुःख संयोग–वियोग रहित जे, जाने चाहीं, ऊहे योग।
स्थिर मन बिन अगुताई, निश्चित चित कर्तव्य सुयोग ।। 23 ।।

संकल्प प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।।(6।24)।।

संकल्पे उपजल सकल कामना, त्यागे, आशा, तृष्णा नाश।
सब ओर से मन इन्द्रिये के, वश में कईले हो परकास ।। 24 ।।

शनैः शनैरूपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।(6।25)।।

धीरज धाईले गने–गने ऊ, बुद्धि से कर मन अहथीर।
आत्मे में मन कर धारण, चिन्ता कुछ ऊ करे ना धीर।। 25 ।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चचंलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।(6।26)।।

चंचल मन विहरे जेह कारण, ना अहथीर एकरा जनिह।
ओकरा रोक करऽ तूँ वश में, परमात्मे ध्यान लगईह।। 26 ।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तामम्।।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्ः।।(6।27)।।

पापहीन अतिशान्त रजोगुन, जे बा उत्तम सुख आनंन्द।
परब्रह्म में मिल गइले जे, से मुनि पावे ब्रम्हानंन्द।। 27 ।।

युन्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्षमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (6। 28)।।

पाप रहित जे योगी हरदम, धइले आत्मा ब्रह्मे ध्यान।
सुख पुर्वक परमात्मा पावे, अनुभव आनंन्द होए महान ।। 28 ।।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।(6।29)।।

योगयुक्त समदर्शी देखो, आत्मा सब भूतन में।
योग युक्त जे योगी बाड़े, देखे आत्मा सब भूतन में ।। 29 ।।

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।(6।30)।।

जे हमरा देखो सब भूतन, सब में हमरे देखो ज्ञान।
ना ओझल हम उनका बानी, ना ओझल ऊ हमरो जान ।। 30 ।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।(6।31)।।

एक भाव से जान सभी में, हरदम हमरे, भजे संसार।
सकल कर्म करितो ऊ योगी, हमरे कुल्ही करेले कार।। 31 ।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।(6।32)।।

समता सबमें जे देखोला, अर्जुन, योगी आत्म समान।
सुख–दुःख के, जे समहिं माने, योगी बा ऊ परम महान ।। 32 ।।

।। अर्जुन पुछले–अर्जुन उवाच।।

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्।।(6।33)।।
ध्यानयोग समत्व जे कहनी, रऊआ हमरो हे भगवान।
नइखी देखत स्थिर रहिहें, चंचल मन योगों में ध्यान।। 33 ।।
चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।(6।34)।।
चंचल मन बा दृढ़ बलशाली, सूनी रऊआ कृष्ण मुरार।
एकरा के वश में कईल बा, जइसे दुष्कर बांध वियार।। 34 ।।

।। भगवान कहले–भगवान उवाच ।।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।(6।35)।।
ना संदेह, मन चंचल अर्जुन वश में कईल बाटे कठीन।
अभ्यासो वैराग्य से होला वश में ई अपने आधिन ।। 35।।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।(6।36)।।
जिनका वश में ना बा मनुआं, कठिन बा उनको ई योग।
साधन से प्राप्त यत्नी के हमरो मतबा ई सुयोग।। 36 ।।

।। अर्जुन पुछले–अर्जुन उवाच।।

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।(6।37)।।
चित्त चंचल श्रद्धा में लागत, योग भ्रष्ट बा जेकर ज्ञान।
संसिद्धि के का गति भगवन, शिथिल यत्नि के कहीं बखान।।37।।
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि।।(6।38)।।

उभय भ्रष्ट, छिन्न मेघ असा, मोहित भगवत पाथे आश।
का गति कृष्ण होए अनाश्रित, नाशे हो कि उनकर आश।।38।।

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।।(6।39)।।

ऐह संशय के छेदीं भगवन, बचे ना कुछ अवशेष।
रऊआ छोड़ ना, संशयछेदी मिली ना कोई योग्य विशेष।।39।।

।। भगवान कहले–श्रीभगवानुवाच।।

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।(6।40)।।

ना इहवां ना उहवाँ होई, पार्थ नाश ओह नर के।
जे करिहें कल्याण कर्म के, ना पईहें दुगर्ति के।। 40 ।।

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।।(6।41)।।

पाके पुन्य वर्षों बसिहें, पईहें उत्ताम स्वर्गानंन्द।
पुनः योग भ्रष्ट घर जन्मे, योगी, चाहे राजा नंन्द।। 41 ।।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।।(6।42)।।

अथवा योगी ज्ञानमान कुल, ले, ले, तबहिं उहो अवतार।
ऐसन जनम जग दुर्लभ बा, जन्मे योगी कुल संसार ।। 42 ।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।(6।43)।।

उहाँ पहिलका बुद्धियोग से, देहे पहिला कईल संस्कार।
यत्न करे फिर सिद्धि खातिर, करे पार्थ योग व्यवहार।। 43 ।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।।(6।44)।।

ज्ञान पहिलका खीचे उनका, कईल जे पहिलुक अभ्यास।
जिज्ञासु योगो के करईत, लंघले शब्द ब्रह्म प्रकाश।। 44।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।।(6।45)।।

अनेक जनम के सिद्धि कईल, भईल सकल पाप विहीन।
से योगी ईश्वर गति पावे, जे यत्ने, अभ्यासे, लीन।। 45 ।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।(6।46)।।

तपसी से योगी श्रेष्ट बा, ज्ञानी से भी मानल श्रेष्ट।
योगी श्रेष्ट कर्मकाण्डी से, एहसे योगी, बनजा श्रेष्ट।। 46 ।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।(6।47)।।

सब योगीयो में श्रद्धालु जे, अन्तःकरण आत्मा से ध्यान।
श्रद्धमान जे हमरो भजेला, हमरो से बा, श्रेष्टो मान।। 47 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभगवदगीतासूपनिषदत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ।। 6 ।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र
श्री कृष्ण अर्जुन संवाद आत्म संयम योग नामका छठवाँ
अध्याय समाप्त।। 6 ।।

।।अथ सप्तमोऽध्यायः—सातवाँ अध्याय।।

।। श्रीभगवानुवाच —श्री भगवान कहले।।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु।।(7।1)।।

हमरे आसक्ति मन अर्जुन, हमरे आश्रा, लागल योग।
कईसे संशयरहित, ज्ञान से, जनबऽ सुनऽ से उद्योग।। 1 ।।

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।(7।2)।।

तोहरो खातिर कहेब हमहुँ, कुल्ही रहस्य ज्ञान विज्ञान।
जे जनला बाँची जग नाहीं, तनिको कुछ औरी अज्ञान।। 2 ।।

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।(7।3)।।

नर हजार में केहु यत्नी, यतन करे हमरा पावे के।
ओह यत्नी में केहु योगी, तत्व हमार जे जानेले।। 3 ।।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।(7।4)।।

जल, थल, पावक, वायु, गगन, मन, औरी बाटे बुद्धि, हुँकार।
ऐसन बाँटल बा प्रकृति मोर, अर्जुन जानऽ आठ प्रकार।। 4 ।।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।।(7।5)।।

ई अपरा, जड़ बा प्रकृति के, दोसर हमरो चेतन प्रान।
जेकरा के धारय जग प्राणी, चेतन परा हऽ अर्जुन जान।। 5 ।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा।।(7।6)।।

ऐसन बुझऽ सब भूतन के, उत्पति होला दुनू संयोग।
हमहीं उत्पन्न करीं जिऊके, हमहीं प्रलय करीं वियोग।। 6 ।।

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।(7।7)।।

हमरा छोड़ दुसर कुछ नाहीं, बाटे अर्जुन ! ऐह संसार।
हमरे में गुंथलबा दुनियां, जईसे मणि, सूत के तार।। 7 ।।

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु।।(7।8)।।

रस हम जल में, अर्जुन जानऽ, चन्द्र, सूर्य बानी परगास।
ऊँ वेद में, पौरूष नर में, शब्द बनल बानी आकाश।। 8 ।।

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।।(7।9)।।

गंध पवितर धरती में हम, आग में हमहुँ बानी तेज।
जीवन सब प्राणी में हमहीं, तपसी में हमहीं तप तेज।। 9 ।।

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।।(7।10)।।

सबके बीज तूँ जानऽ अर्जुन, हमरो सनातन कारण जान।
ज्ञानी के हम ज्ञाने बानी, तेजी के हम तेज महान।। 10 ।।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरूद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।(7।11)।।

बलशाली के बल हम बानी, अर्जुन, कामरहित बलवान।
सब जिऊके धर्म अनुकूले, लालसा उनकर बानी जान।। 11 ।।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।।(7।12)।।

सात्विक, राजस, तामस जे बा, हमरे से उपजलबा जान।
किन्तु हम ओकरा में नईखी, ना ऊबा हमरो में जान।। 12 ।।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्।।(7।13)।।

तीन गुन से मोहित भईल, सकल प्राणी, येह संसार।
मोहित हमरा ना जानेला, ना अविनाशी तत्व विचार ।। 13 ।।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।(7।14)।।

ई दैवीगुण बड़ा कठिन बा, बड़ा यतन मम माया पार।
जे जन हमरा सदा भजेले, से जन माया तरे संसार ।। 14 ।।

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः।।(7।15)।।

माया हरल ज्ञान बा जेकर, बा स्वभाव, आसुरी जान।
अधम कुकर्मी जे जन बाढ़े, मुढ़ भेजे ना हमरो जान।। 15 ।।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।(7।16)।।

चार तरहसे भजे सुकर्मी, अर्जुन हमरो यार प्रकार ।
जिज्ञासु, आर्ती, अर्थार्थी, निष्कामी जे बा संसार ।। 16 ।।

तोषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।(7।17)।।

ओह में नित्य एक चित्त ज्ञानी, बाड़े उत्तम, अईसन जान ।
हमहुँ अतिप्रिय उनका बानी, ऊ ज्ञानी बा हमरो प्राण ।। 17 ।।

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।(7।18)।।

सब उदार ज्ञानी जे बाड़े, मोर मत ज्ञानी रूप हमार ।
अति उत्तम गति उहो पावे, हमरे में स्थिति बा यार ।। 18 ।।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।(7।19)।।

बहुत जनम के अन्त जनम में, तत्व ज्ञानी जाने हमरा के ।
अति दुर्लभ संत ऊ बाड़े, जे वासुदेव, जाने हमरा के ।। 19 ।।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।(7।20)।।

ज्ञान हरलबा काम उपज से, आपन स्वभावे पूजे अन्य देव ।
ओही नियमें उहो चलेला, मनले हमरा बाड़े भेव ।। 20 ।।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।(7।21)।।

जे, जे, जेकरा पूजे कामी, श्रद्धा भक्ति देव स्वरूप ।
ओकरा के ओही में श्रद्धा, करिले स्थिर ओकरे रूप ।। 21 ।।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्।।(7।22)।।

जेकरा जे श्रद्धा से पूजे, ओकरे चेष्टा करे प्रनाम।
मनसा फल उनके से पावे, हमरे द्वारा कईल विधान।। 22 ।।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मदभ्क्ता यान्ति मामपि।।(7।23)।।

नाशवान फल ओह भक्ति के, अल्पे ओकर ज्ञान विचार।
देव भक्त देवो के पावे, हमरो भक्त हमरे ईयार ।। 23 ।।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम्।।(7।24)।।

बुद्धिहीन नर जाने नाहीं,अव्यक्त उत्ताम परम स्वरूप।
अव्यक्त रूप के तत्व ना बुझे, हमरो बुझे व्यक्ति स्वरूप।। 24।।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्।।(7।25)।।

हम छिपल माया से बानी, प्रत्यक्ष नाहीं सब जन में।
अज्ञानी ना जाने कबहुँ, हम अजन्मा बानी जग में।। 25 ।।

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।(7।26)।।

भूत, भविष्य वर्तमान के, अर्जुन हम सब जानीं।
भक्तहीन ना जाने कबहुँ जाने, असल तत्वके ज्ञानी।। 26 ।।

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप।।(7।27)।।

इच्छा राग से उपज द्विधा अर्जुन बा जग मोहले।
अति अज्ञान प्राप्त सब प्रानी बा अर्जुन, मोहवा पवले ।। 27 ।।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।(7।28)।।

पुन्य कर्म से कटलबा जेकर सब पाप द्वन्द दुनियाँ के।
मोह राग से जे छुटल बा भजेले निश्चय हमरा के।। 28 ।।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्।।(7।29)।।

हमरे आश्रा यतन करे जे, छुटे जरा–मरण अज्ञान।
जानेऊ सब ब्रह्मकर्म के, औरी अखिल ब्रह्म के ज्ञान।। 29 ।।

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।।(7।30)।।

साधिभूत ओ साधि यज्ञ के, साधि दैव हमरे जे मान।
से युक्त चित्त, हमरे पावे, अन्त त्याग, जब प्राण।। 30 ।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवदगीतासूपनिषदत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ।। 7 ।।

ऊँ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद आत्म संयम योग नामका सातवाँ अध्याय समाप्त।। 7 ।।

।। अथाष्टमोऽध्यायः–आठवाँ अध्याय।।

।। अर्जुन उवाच – अर्जुन पुछले।।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।(8।1)।।
का ऊ ब्रह्म, कर्म का भगवन, का अध्यात्म के बाटे रूप।
अधिभूत ओ अधिदैव का, हम केकरा कहब अनूप।। 1 ।।

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः।।(8।2)।।
के अधियज्ञ बनके बा इहवाँ, ऐह देहे कईसे भगवान।
अन्तकाल में कइसे जानस, युक्त चित नर राउर नाम।। 2 ।।

।। श्रीभगवानुवाच – भगवान कहले।।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वाभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।।(8।3)।।
परम अविनाशी अक्षर ब्रह्मे, जिवात्मा बानी अध्यात्म। भूत भाव के
उत्पन्न कारण, त्याग के कहलस कर्मो नाम।। 3 ।।

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर।।(8।4)।।
अधिभूत बा नाशवान जग, स्वयं ब्रह्मबानी अधिदैव।
अधियज्ञ बन हमहुँ अर्जुन, बानी देहिया बीच सदैब ।। 4 ।।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।(8।5)।।

अन्तकाल में हमरा सुमरत, जे नर त्यागे आपन देह।
पावे प्रानी मोर रूप के, तनिको ना एहमें संदेह।। 5 ।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।(8।6)।।

अन्तकाल जे याद करत नर, आपन देहिया तजिहें।
अन्तकाल के भावे अर्जुन, बईसने देहिया पईहें ।। 6 ।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।(8।7)।।

एहसे सब छन याद राखके, लड़ऽ तूँ पार्थ मैदान।
हमरे में मन बुद्धि सौंपल, हमरे पाई ना संशय जान ।। 7 ।।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।(8।8)।।

अभ्यास योग युक्त अभर्मी, चित्त ना भटके दोसर थान।
परम दिव्य मम रूपो पावे, अर्जुन तूँ एकरा के जान।। 8 ।।

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।(8।9)।।

जे सर्वज्ञ जनले, सुक्ष्म अति, सबके धाता रूप अचिन्त।
सूर्य तेज सम विरत अविद्या, चिन्ते अनादिरूप निश्चिन्त।। 9 ।।

प्रयाणकालेमनसाचलेनभक्त्या युक्तोयोगबलेनचैव।
भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्यसम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।(8।10)।।

अन्तकाल जे करे अचल मन, भक्तियुक्त योगो से।
भौंआ बीच प्राण के राखे, पावे दिव्य परम पुरूष से।। 10 ।।

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यंचरन्ति तत्ते पदं संगहेण प्रवक्ष्ये।।(8।11)।।

जेकरे वैदिक ओम कहेले, विगत राग पईठे जेह ठावं।
ब्रह्मचारी बन खोजे खोजी, कहेब ओकर तनिक गुनगावं।। 11 ।।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।(8।12)।।

सभे दुअरिया संयम इन्द्रिये , हिय में रोकले मन के।
प्रान आपन ऊ मूर्ध्या धईले, अहथीर योगी बन के ।। 12 ।।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देह स याति परमा गतिम्।।(8।13)।।

एके आखार आईम् उच्चारत, हमरो सुमरत त्यागे प्राणे।
से प्राणी हमरे के पावे, परम गति जे परम महान।। 13 ।।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।(8।14)।।

हमरे मे चित थोपले अर्जुन, रोज करे हमरे परनाम।
ओह युक्ति योगी के खातिर, बानी हमहुँ सुलभ महान ।। 14 ।।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।(8।15)।।

परम सिद्धि के पावल योगी, ना दुखी हो हमरा पावे।
क्षण भंगुर जे पुनर्जन्म बा, ना होला उनका के।। 15 ।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।(8।16)।।

ब्रह्मलोक से मृत्युलोक तक, सब आवागमन के राही।
हमरा पवले ना होई अर्जुन, जनम फेर जग मांही।। 16 ।।

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।(8।17)।।

युग हजार के ब्रह्मदिन एक, युग हजार के होला रात।
जे ज्ञानी ई तत्वों जाने, जाने काल तत्व के बात।। 17 ।।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।(8।18)।।

सब भूत ब्रह्म दिन में उपजे, तन अव्यक्त से आके।
सब नष्ट रात में होला, अव्यक्तब्रह्म तन जाके।। 18 ।।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा–भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे।।(8।19)।।

उहे भूत फिर वेवश उपजे,प्रकृति गुने रात में नष्ट।
फिर उत्पन्न दिन में होला,अर्जुन एहसे पावे कष्ट।। 19 ।।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।।(8।20)।।

ओह से अलगे जे अव्यक्त बा, उहे बाटे सनातन भाव।
सकल भूत के नष्टो भइलो, उनका ना बा नष्टो चाव।। 20 ।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।(8।21)।।

ई अक्षर अव्यक्त कहल बा, ओकरे कहे परमगति नाम।
जे पाके नर लौट ना आवे, से हऽ हमरो परमम् धाम।। 21 ।।

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।(8 ।22)।।

जेकरा भीतर सकल जीऊ बा, जेकरे से पूरन संसार।
पूर्ण भक्ति से पावे अर्जुन, उहो परम पुरुष के पार।। 22 ।।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।।(8 ।23)।।

जवन समईया छोड़े देहिया, फिर ना लौटे योगी।
उहो समईया कहेब अर्जुन, फिर घुम आवे योगी।। 23 ।।

अग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः।।(8 ।24)।।

उत्तरायन के छवो महिना, शुक्ल अग्नि ज्योतिर।
मुअले फेर ना लौटे योगी, पावो ब्रह्मो ब्रह्म शरीर।। 24 ।।

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते।।(8 ।25)।।

दक्षिणायन के छवो महिना, धूमरात्रि में तजे शरीर।
चन्द्रज्योति ऊ पाके लौटे, पावे नर से पुनः शरीर।। 25 ।।

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।(8 ।26)।।

कृष्न शुक्ल दू राह सनातन, जगमें मानल बा परमान।
एकसे गइले लौटला जग, दुसरो लौटे नाहीं जहान।। 26 ।।

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन।।(8 ।27)।।

दुनू राह जे योगी जाने,उनका ना कबहुँ हो मोह।
एहसे हरदम पार्थ बुद्धि से, हमरे करऽ योग से टोह।।(8।27)।।
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदंविदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।(8।28)।।
जे योगी जनले ई बतिया, टपले वेद, यज्ञ, तप, दान।
पावे परम सनातन पदके, हमरो जहाँ शान्ति स्थान।। 28 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगे नामाष्टमोऽध्यायः।। 8 ।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्या योग शास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद अक्षर ब्रह्म योग नामक आठवां अध्याय समाप्त।

।नवमा अध्याय–अथ नवमोऽध्यायः

।। श्री भगवान कहले–श्रीभगवानुवाच।।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।। (9।1)।।
कहेब ज्ञान विज्ञान गुप्त हम, निष्पापी तूँ भक्त विशेष।
जेकरा जान मोक्ष हो जाई, अशुभकर्म सब होई शेष।। 1 ।।
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।। (9। 2)।।
अतिगुप्त, सब विद्याके रांजा, बड़ा पवितर, उत्तम ज्ञान।
बड़ा सुगम साधन में बाटे, प्रत्येक्ष फल अविनाशी जान।। 2 ।।
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।। (9। 3)।।
श्रद्धा रहित धरम से जेकर, ऐसन पुरूष, जे बा संसार।
ना पईहें ऊ कब्बो हमरा, घुमिहें जनम–मरन संसार।। 3 ।।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।। (9। 4)।।

हमरे पूर्णरूप बा जग में, छिपल, हम पसरल संसार।
हमरे भीतर सकल जीऊ बा, हम ना बानी ओंकर आधार।। 4 ।।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः।। (9 । 5)।।

सब भूत हमरो में नइखो, देखऽ योगमाया, कर ज्ञान।
उत्पन्न पालन करतो आत्मा, हम नइखी भूतन में जान।। 5 ।।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वन्त्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। (9 । 6)।।

जइसे घुमक्कर बा वियरिया, हरदम स्थिर रहे आकाश।
वइसे सब प्रानी हमरा में, स्थित बा, मन करऽ विश्वास।। 6 ।।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।(9। 7)।।

कल्प अन्त भईला पर अर्जुन, सब भूतन, लय हमरा में।
कल्प आदि भईला पर उनको, रचिले फिर जगवा में ।। 7 ।।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। (9 । 8)।।

आपन माया वश, स्वभाव से, परवश जे, भूतवा संसार।
जग में रचिले सब भूतन के, ओंकरे करम से बारंम्बार।। 8।।

न च मां तानि कर्माणि निबन्धन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु।। (9 । 9)।।

हमरा ना बाँधेला अर्जुन, ओह करम के जेवा फंद।
उदासीन अस, असक्त कर्म में, जानऽ बानी कर्म स्वच्छन्द।।9।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (9 । 10)।।

प्रकृति चराचर के रचली जग, हमरे माया शक्ति पाके।
ऐहि हेतु जग ई अर्जुन, नाचे चक्कर खाके ।।10।।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्।।(9 । 11)।।

मूर्ख लोग हमरो ना जाने, धईले जगबीच नरतन रूप।
असल भाव के ना ऊ जाने, हमरो जाने तुच्छ स्वरूप।। 11 ।।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।(9 । 12)।।

झूठे आशा, झूठ कर्म सब, झूठ ज्ञान जे बा अज्ञान।
असूर भाव के धारण कईले, सब स्वभाव बा आसुरी जान।। 12 ।।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।(9 ।13)।।

अर्जुन जे दैवीजन योगी, हमरो बुझे सनातन रूप।
अविनाशी हमराके माने, निःचित मनसे भजेला रूप।। 13 ।।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्युयुक्ता उपासते।।(9 ।14)।।

हरदम हमरे करे ऊ किर्तन, यतन राख नित करे उपास।
भक्त भाव से करे प्रार्थना, एक चित्त हो दृढ़ विश्वास।। 14 ।।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। (9 । 15)।।

ज्ञान यज्ञ से विराट रूप के, पूजन करे एकत्व समान।
दुसरो अलगे भाव उपसले, पूजे बहुतो भिन्ने जान।। 15 ।।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्।। (9 । 16)।।

हम पितर यज्ञ, स्वधा हम, हमहीं दवा, घृत बानी, हमहीं मंत्र, आग भी हमहीं हवन कर्म सब बानी।। 16 ।।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।। (9 । 17)।।

बाबा, माता, बापो, धाता, जानऽ बानी हम जगवा के।
ऋक, साम, यजुर्वेद जे, जानऽ पवितर ओम् हमरा के ।। 17 ।।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।।(9 । 18)।।

हमहिं गति गवाह पोसनियां, शरण गहिले बिन उपकार।
जनम मरन के कारण हमहिं, हमहिं बीज बनल अविकार।। 18।।

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन।। (9 ।19)।।

सूर्यरूप हो हमहीं तपाईं, खींच वर्षा के, बरसौनी।
जीवन–मरन सत्य–असत्य जे, अर्जुन हम सब बानी।। 19 ।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा–यज्ञैरिष्टवा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक–मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।। (9 ।20)।।

तीनों वेद से पूजे पवितर, पीये सोम स्वर्ग के ध्यान।
पुन्य से पावे इन्द्र लोक के, स्वर्गो भोगए देव समान।। 20 ।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं–क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना–गतागतं कामकामा लभन्ते।। (9 ।21)।।

उहो स्वर्ग विशाल भोग के, छिन्न पुन्य आवे संसार।
तीन वेद सकाम कर्म से, सकामी जन्मे बारम्बार।। 21 ।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।(9 । 22)।।

हमरा जे निष्काम भावे से, भजे निरन्तर एके ध्यान।
उनको स्वयं प्राप्त काराई, योग क्षेम के तत्व ज्ञान।। 22 ।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। (9 । 23)।।

दुसर देव जे पूजे अर्जुन, श्रद्धा भक्ति करत महान।
हमरे पूजन उहो करेले, अविध कर्म जे बा अज्ञान।। 23 ।।

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते।। (9 । 24)।।

हम सब यज्ञ के भोक्ता बानी, हमहिं स्वामी पालनहार।
तत्व से हमरा ना जानेला, एहसे जन्मे बारम्बार।। 24 ।।

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।(9 ।25)।।

देव पितर ओ भूत प्रेत के, पूजे से, पावे ओकरे के।
हमार भक्त जे हमरा पूजे, अन्त समय पावे हमरा के।। 25 ।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।(9 । 26)।।

पान, फुल , फल, जल हमरा, अर्पण करे प्रेम भक्ति से।
निष्कामी के अर्पित वस्तु, भक्षण करीं हम आत्मा से।। 26 ।।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।। (9 । 27)।।

अर्पण करऽ तूँ हमरे अर्जुन, सकल कर्म जे जग, ध्यान।
खाना, पीना , यज्ञ, दान, तप, हमरे मे सब करऽ दान।। 27 ।।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। (9 । 28)।।

शुभ अशुभ से छुटब तबहीं, तजब सकल कर्म संन्यास।
कर्मफांस से छुटब जबहीं, तब पईब, हमरे रूप विकास।। 28 ।।

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।। (9 । 29)।।

एक रूप हम सबमे बानी, ना दोस्तो ना दुश्मन जान।
जे हमरा के प्रेम से भजिहें, हम उनके, हमरे ऊ जान।। 29 ।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।। (9 । 30)।।

अतिदुष्ट यदि भक्त बनल नित, परम भाव से भजे हो दास।
उहो शाधु माने लायक बा, स्थिर उनकर बुद्धि विकास।। 30।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।(9 । 31)।।

तुरते बन धर्मात्मा उहो, परम शान्ति के पावे पार्थ।
हमरो भक्त नाश ना होला, अर्जुन एकरा जानऽ यथार्थ ।।31।।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।।(9 ।32)।।

अर्जुन पाप योनि जे जनमल, स्त्री, वैश्य अरू शुद्रो जान।
हमरे आश्रा पावे प्राणी, परम गति जे परम महान।। 32।।

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।। (9 । 33)।।

का बा फेर पुनीत ब्राह्मम के, राजऋषि पावे मम थान।
एहसे क्षणभंगुर तन पाके, सदा भजऽ धर हमरे ध्यान।।33।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।(9 । 34)।।

हमरे में मन राख भक्त बन, हमरे नमन करऽ मनकाम।
हमरे आश्रा करऽ तूँ आत्मा, एहसे पईब, हमरे धाम।।34।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीता सूपनिषंत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः।। 9 ।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्या योग शास्त्र
श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद राजविद्याराजयोग नाम का
नवां अध्याय समाप्त।

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः

अथ दशमोऽध्यायः–दसवां अध्याय।।

।। श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया।। (10 |1)।।

अर्जुन सुनऽ फेर मोर बतिया, बाटे रहस परम महान।
तोहरो हित इच्छा से आपन, कहेब अतिशय प्रेमी जान।।1।।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः।। (10 | 2)।।

हमरो जनम ना जनले कोई, चाहे ऋषि, देव, विद्वान।
आदि देव शाधु हम बानी, सभे महर्षि बाटे अनजान।। 2 ।।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असम्मूढ़ः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते।।(10। 3)।।

हमरा जे जनले अजन्मा, अनादि तत्व लोक महेश।
ओह ज्ञानीके मर्त्तलोक में, सकलो होला पापो शेष।। 3 ।।

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च।। (10 |4)।।

बुद्धि, दृढता, क्षमा, सत्य जे, दमन–शमन दुःख सुखो जान।
उत्पति प्रलय भय ओ निर्भय, औरी जेबा तत्वो ज्ञान।। 4 ।।

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः।।(10 | 5)।।

यश–अपयश ओ तपोदान में, समता तुष्टि अहिंसक एक।
प्रानी अलग–अलग मन भावे, हमरे से ई जानऽ विवेक।। 5 ।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मभ्द्रावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।। (10 ।6)।।

साधु सात, चारो सनकादिक, चौदह मनु, मन मानस पुत।
हमरे भावे पहिले भईले, जिनकर बाजग प्रजा सपुत।। 6 ।।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः।। (10 ।7)।।

जे हमार ई विभूति योग के, जाले तत्व शक्ति से जान।
निच्छल ध्यान योग द्वारा से, एक भाव हो ना संशय मान।। 7।।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। (10 ।8)।।

हमहिं जग उत्पति के कारण, हमरे से सब जग संचार।
इहे मान भजे सब ज्ञानी, हमरे हरदम भिन्न प्रकार।। 8 ।।

मच्चित्ता मदगतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।(10 । 9)।।

चित ज्ञान हमरे में थोपले, हमरे ज्ञान परस्पर जान।
नित हमरे इतिहास में तुष्टि, रमन करे हमरे में जान।। 9 ।।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।(10 । 10)।।

ओह में जे, हमरा हरदम, प्रेम से भजिले भक्त।
उनको ज्ञान योग हम दीले, सनेहसे पावे मोर अव्यक्त।। 10 ।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वताः।।(10 ।11)।।

उनको कर, अनुकम्पा हमहुँ, अज्ञाने उपजल जे अधियार।
अन्तः करण के नाश करीं हम, प्रकाशित ज्ञानदीप उजियार।।11।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पूछले।।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरूषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।।(10 । 12)।।

पावन परमधाम ब्रह्मजे, परम पुरूष सनातन धीर।
दिव्य पुरूष अजन्मा रऊआ, बनल व्यापक कह अहथीर।। 12 ।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। (10 । 13)।।

आदिदेव ऋषि नारद, देवल कहले असित, व्यास महान।
आज स्वयं फेर रऊआ कहनी, हमरा हित में हे भगवान।। 13 ।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा नः दानवाः।। (10 । 14)।।

रऊआ जे कहनी हे माधो, मननी हम ई सत्य प्रमाण।
राउर लीला रूप ना जाने, का दानव का देव महान।। 14 ।।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरूषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते।। (10 । 15)।।

स्वयं रऊआ अपना के जानी, हे भूतेश हे परम महान।
देव–देव हे जगत पते तूँ, स्वयं स्वयं अपने अनुमान।। 15।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि।। (10 । 16)।।

आपन दिव्य विभूति कहे में, रऊआ बानी पूर्ण सुयोग्य।
जे विभूति से व्यापल जग बिच, रऊआ बानी स्थिर लोग।। 16 ।।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया।। (10 । 17)।।

कइसे चिन्तन करितो रऊआ, जानेब हम योगी भगवान।
का–का बा ? चिन्तन के बतिया, हमरो खातिर कहीं भगवान।।17।।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।। (10 । 18)।।

आपन योग विभूति कहीं फिर, भगवान हमरो पूर्ण विस्तार।
जे सुन मन तिरपित ना होला, अमृत वचन कहीं निखार।। 18।।

।। श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरूश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे।। (10 । 19)।।

आपन अब हम, दिव्य विभूति, कहेब तोहरो कुरू प्रधान।
ओ विस्तार के अन्तो नाहीं, एकरा जनिह कुरू प्रधान।। 19।।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च।। (10 । 20)।।

सब भूतन के हृदय में स्थिर, हम आत्मा भईल अजीत।
आदि अन्त ओ बिचो जानऽ, हमहीं सदयः बानी मीत।। 20 ।।

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरूतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।। (10 । 21)।।

अदिति पुत्र हम विष्णु बानी, ज्योति में हम सूर्य प्रकाश।
पवनदेव मरीचिबनल हम, नखत में चन्दा बानी आकाश।।21।।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।। (10 । 22)।।

सामवेद वेदन में बानी, इन्द्रदेव, देवन में जान।
इन्द्रियो में मन हम बानी, प्राणी जनमें ज्ञान महान।। 22।।

रूद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरूः शिखरिणामहम्।। (10 ।23)।।

रूद्र एगारह में शंकर हम, यक्ष, राक्षस, बीच कुबेर।
आठो वसू में, अग्नि हमहीं, बानी शिखरन, बीच सुमेर।। 23।।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः।।(10 । 24)।।

मुख्य पुरोहित हमहिं वृहस्पति, तूँ अर्जुन एकरा जानऽ।
सेनापति में कार्तिक बानी, जल में समुन्दरे मानऽ।। 24।।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः।। (10 ।25)।।

भृगु बनल हम शाधु बीच में, बानी एक वचन ओंकार।
यज्ञ में जप स्थिर में जानऽ, हमरे अचल हिमालय यार।। 25।।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः।। (10 । 26)।।

सब गछिअन में पीपर हमहीं, देव ऋषि में नारद जान।
गन्धर्वन में हमहिं चित्ररथ, सिद्धि मुनि में कपिल महान।। 26।।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम्।।(10 । 27)।।

घोड़ा में अमृत से उपजल, उच्चैश्रवा हम अश्वो बानी।
नरमें राजा जानऽ हमरा, गज में ऐरावत बानी।। 27।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुमिकः।।(10 । 28)।।

हथियारन में वज्र बनल हम, कामधेनु बानी, गईयन में।
जनम हेतु कामदेव हम, वासुकी सांप बानी सांपन में ।। 28।।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरूणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्।। (10 । 29)।।

शेषनाग बानी नागन में, जलचर में हम वरूणोदेव।
आर्यमा पितरन में बानी, शासन् में हमहिं यम देव।। 29।।

प्रहलादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्।। (10 । 30)।।

दैतन में प्रहलादे बानी, काल बनल गिनती मे जान।
पशुअन में मृगराजे बानी, पक्षी में हम गरूड़ महान।। 30 ।।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी।। (10 । 31)।।

बनल वेयार पवित्र करे में, शस्त्रधारी में रामो जान।
मछरी बीच मगर हम बानी, नदियन में हम गंगा मान।। 31।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्।। (10 । 32)।।

सृष्टि आदि, अन्त, मध्य हम, तूँ अर्जुन एकरा जनिह।
विद्या में अध्यात्मवाद हम, वाद–विवादी, तर्की भनिह।। 32।।

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः।।(10 । 33)।।

आकार बनल अक्षर में बानी, हमहिं द्वन्द बनल समास।
अक्षय काल विराट बनल हम, हमहिं विधाता चहुमुख आश।।33।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम्।
कीर्ति : श्रीर्वाकच नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।। (10 । 34)।।

सकल मृत्यु के कारण हमहीं, उत्पति, उन्नति , भविष्यो जान।
नारी में कीर्ति श्री, वाणी, स्मृत, मेघा, धृत, क्षमो, जान।। 34।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम्।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः।। (10 । 35)।।

श्रेष्ट साम गीतन में हमहीं, हम गायत्री छन्द महान।
महिनन में हम अगहन बानी, ऋतु में मोहे वसन्ते जान।। 35।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्।। (10 । 36)।।

छली बीच जुआ हम बानी, तेजी बीच तेज प्रभाव।
जय में विजय, दृढ़में निश्चय, सात्विक जन में, सात्विक भाव।।36।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।। (10 । 37)।।

वृष्णी वंश में वासुदेव हम, पाण्डव में अर्जुन जान।
मुनि में व्यास कवि में हमरे, जनिह शुक्राचार्य महान।। 37।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम्।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्।। (10 । 38)।।

शासक के दण्ड शक्ति बानी, विजय निति विजयी में।
गुप्तबात में मौन बनल हम, तत्व ज्ञान ज्ञानीयों में ।।38।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। (10 । 39)।।

हमहिं बीज सब भूतन के, जे बा अर्जुन जगत पसारं।
चर–अचर ना कोई भूत भी, जे ना बा हमरो आधार।। 39।।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया।। (10 । 40)।।

अर्जुन हमार दिव्य विभूतिके, नईखे कोनो परावार।
संक्षेपे कहनी हम तोहरा, आपन विभूति जे विस्तार।। 40।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्।। (10 । 41)।।

शक्ति कान्ति युत् जे विभूति बा, बाटे हमरे अंश जहान।
उत्पन्न हमरे तेज से होला, अर्जुन तूँ एकराके जान।। 41।।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्यामिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्।।(10 । 42)।।

अथवा बहुतो जान का करबऽ, अर्जुन ई सब ज्ञानी बात।
सकल जगत हम एके अंशे, धारण कईले स्थित तात।।42।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे विभूतियोगो
नाम दशमोऽध्यायः ।। 10 ।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योगशास्त्र श्री कृष्ण–
अर्जुन संवाद विभूति योग नाम का दसवां अध्याय समाप्त ।।10 ।।

।।अथैकादशोऽध्यायः–एगारवाँ अध्याय।।

।।अर्जुन उवाच– अर्जुन कहले।।

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।। (11 । 1)।।

हमरो उपर कए अनुग्रह, अध्यात्म गुप्त जे कहनी।
रउए कहनी ओही उपदेशे, अज्ञान नष्ट हम भईनी।। 1।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्।।(11 ।2)।।

रउए से सूननी हे माधो, भूतन जनम–मरन संसार।
अविनाशी महातम सूननी, राउर हमहुँ .. विस्तार।। 2 ।।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरूषोत्तम।। (11 । 3)।।
जईसन कहनी ठीके ओईसन, बा परमेश्वर राउर रूप।
इच्छा बा सन्मुख देखेके, राउर परम रूप अनूप।। 3 ।।
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम्।।(11 । 4)।।

यदि हम देख सकीं रूपके, रउआ बा यदि ईहो मान।
दर्शन दीं हमरा के योगी, अविनाशी जे रूप महान।। 4 ।।

श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

पश्च मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्त्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। (11 । 5)।।

सौ हजार ई बनल रूप जे, किसिम–किसिम हे पार्थ।
देखऽ रूप अलौकिक बा ई, देखऽ नाना वर्ण यथार्थ।। 6।।

पश्यादित्यान्वसून्रूद्रानश्रिवनौ मरूतस्त्था।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ।।(11 । 6)।।

देखऽ अर्जुन आदित्य वसूके, मरूत, रूद्र अश्वनी अवतार।
जे पहिले कबहुँ ना देखलऽ, देखऽ अजरज रूप हमार।।6।।

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यदद्रष्टुमिच्छसि।। (11 । 7)।।

हमरे देहे देखऽ अर्जुन, सकल चराचर जिऊ जहान।
औरी जे देखे के इच्छा, देख सकेलऽ एक स्थान।। 7 ।।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम्।। (11 । 8)।।

ऐह शरीर के आँख न सकिहें, देख दिव्य ई रूप अनुप।
ऐहसे दिव्य दृष्टि हम दिले, देखऽ हमरो दिव्य स्वरूप।। 8।।

।। संजय उवाच–संजय कहले।।

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्।। (11 । 9)।।

राजा सूनीं ! ऐसन, हरि कइले, हमरो देखऽ अब नरराय।
परमरूप ऐश्रवर्य युक्त जे, अर्जुन हित देइले दर्शाय।।9।।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।। (11 । 10)।।

अगनित मुख अँखियन सहित बा, देखत अदभुत दर्शन भईले।
बहुतो निमन गइना धईले, बहुतो असतर हाथ उठौले।। 10।।

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम्।। (11 । 11)।।

उत्तम माला, उत्तम वसतर, बालेपल दिव्य सुगन्धा।
चकित विराट असीम रूपके, देखले तब अर्जुन निर्द्वन्द।। 11।।

दिवि सूर्यसहस्त्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।। (11 ।12)।।

यदि आकाश में एके साथे, उगिहें तेजो सूर्य हजार।
विश्वरूप से नाहीं तुलना, यदि उगलो एक हजार।। 12 ।।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा।। (11 । 13)।।

देखले अर्जुन भाँति–भाँति के, बाँटल जग के सब भाव।
देव–देव तन, सब जग देखले, एके जगहिया एके ठांव।। 13।।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः।
प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभाषत (11 । 14)।।

तब्बे अचम्भित होके अर्जुन, पुलकित सौंसे रोंआँ गात।

कहले दूनू हाथ जोर के, सिस नवा कह, सूनीं तात।। 14।।

।।अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले।।

पश्यामि देवांस्तव देव देहे, सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ–मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्।। (11 । 15)।।

एऊए देहे देखत हम बानी, सकल चराचर भूत संसार।
कमल पत्र पर बईठल ब्रह्मा, शंकर, शाधु, सर्प अपार।। 15।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं–पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादि–पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप।। (11 । 6)।।

हाथ, पेट ओ मुंह अनको, रूप अनंन्त देखनी चहुओर !
आदि अन्त ओ मध्य ना देखीं, विंश्व रूप बा परम कठोर।। 16।।

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता–दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।। (11 । 17)।।

मुकुट चक्र ओ गदा विराजित, तेज पुंज सब ओर प्रकाश।
सब ओरी देखत हम बानी, ज्वलित अग्नि जस सूर्य भास।। 17।।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं–त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता, सनातनस्त्वं पुरूषो मतो मे।। (11 । 18)।।

रऊआ परमवेद अक्षर जे, रऊए जगके परम निधान।
आदि सनातन धर्म रक्षक तूँ, हमरो मत्त ई हे भगवान।। 18।।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य–मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम्।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम्।। (11 ।19)।।

आदि अन्त ओ मध्य बिना जे, चन्द्र सूर्य से तेजो आँख।
देखत धधकत आग मुँह में, जगत तप्त बा तोहरे ताप।। 19।।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्टवाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं–लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन्।। (11 । 20)।।

भगवान भूतल गगन बीच में, चहुओर बनल रहीं आलोक।
देख राउर ई रूप भयंकर,. पिड़ित भइले तीनू लोक।। 20 ।।

अमी हि त्वां सुरसघां विशन्ति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः।।(11 । 21)।।

रऊए में पईठे सब देवता, हाथ जोर डर करे पुकार।
शान्ति मंत्र शाधु सब गावे, स्तुति करे सब, भिन्न प्रकार।। 21।।

रूद्रादित्या वसवो ये च साध्या–विश्वेऽश्विनौ मरूतश्चोष्मपाश्च।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे।। (11 ।22)।।

रूद्र, सूर्य, वसु, साधक, विश्वे, मरूत, अश्विनी, पितर प्रधान।
गन्धर्व यक्ष ओ असूर सिद्धगन, विस्मित देखस राउर विधान।।22।।

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरूपादम्।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्टवा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम्।। (11 । 23)।।

बहुत मुंह ओ आँख हाथ जे, बहुत पैर बा रूप महान।
बहुत पेट ओ दाँत भयानक, व्याकुल हम ओ सकल जहान।। 24।।

नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्ण–व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम्।
दृष्टवा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो।। (11 । 24)।।

चमकत आँख फईलल मुख बा, छुअत मेघ बहु रूप विशाल।
देख राउर ई रूपभयंकर भागल धीरज, आत्म बवाल।। 24।।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्टैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास।। (11 ।25)।।

विकराल दांत मुंह के देखीं, चमके प्रलय आग समान।
दिशा ना जानीं ना सुख पाई, खुसहो देवेश, लीं परनाम।। 25।।

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः।। (11 ।26)।।

सब बेटा धृतराष्ट्र राज के, औरी कुल्ही राजा महराज।
भीष्म, द्रोण, कर्ण, और सब, रऊए में पईठे सब राज।।26।।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङगैः।। (11 । 27)।।

बड़ा वेग से मुंह में जाले, बाटे दाढ़ बड़ा विकराल।
केतना के सिर पस्त बनलबा, केतना देखनी दाँते वेहाल।। 27।।

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति।
तथा तवामी नरलोकवीरा–विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति।। (11 । 28)।।

जइसे नदिअनके सब जलवा, दौड़ समुन्दर मिल जाला।
वईसे नर वीरन के देखनी, रऊए मुख में दौड़ समाला।।28।।

यथाप्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा–विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका–स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः।।(11 । 29)।।

जइसे धधकत आग फतिंगा, अपने पईठ, नष्ट हो जाला।
वइसे लोगवा, अतिवेग मुख, अपने आप तुरत समाला।।29।।

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता–ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं–भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो।। (11 । 30)।।

सब मुहवाँ से खात चाट जे, सब लोगन के करीं विनाश।
झलके तेज सकल विश्व प्रभु, ताप करेला जे परगास।।30।।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो–नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं–न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम्।। (11। 31)।।
हमरा ले कहीं, उग्र रूप के? नमस्कार हो, देव भगवान।
खुस होईं आदि रूप के, ना जानी हम राऊर विधान।। 31।।

।। श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो–लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताःप्रत्यनीकेषु योधाः।।(11।32)।।

काल बनाल हम ऐह घड़ी में, अइनी नष्ट करे सब लोग।
तोहरो बीना ना बांची कोई, जे विपक्ष में करिहें शोग।। 32।।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।। (11 । 33)।।

एहसे उठ यश अरजऽ अर्जुन, जीतऽ शत्रु भोगऽ सब राज।
हमरे मारल पहिले से सब, निमित्त मात्र बनजा महराज।।33।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान्।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा–युध्यस्व जेतासि रणे सपन्ना।।(11। 34)।।

भीष्म द्रोण ओ कर्ण जयद्रथ, औरी अनेको योद्धा वीर।
हमरे मारल मारऽ रन में, जित्तब शत्रु करऽ मन थीर ।। 34।।

।। संजय कहले–संजय उवाच।।

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवयस्य कृतांलिर्वेपमानः किरीटी।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं–सगदगदंभीतभीतः प्रणम्य।।(11। 35)।।

ई बतिया भगवन के सूनके, हाथ जोर अर्जुन बलधाम।
कॉपे लगले भयसे तबहीं, बोलले गद्‌गद सूनीं श्याम।। 35।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले।।

स्थानेहृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः।।(11 । 36)।।

भगवन राउर नाम ओ किर्तन, जग हर्षावे, अति योग्य नमन।
चहुओर भयसे भागे राक्षस, सिद्धि संघ सब करे नमन।।36।।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।। (11 । 37)।।

कईसे रऊआ नमन ना करिहें, आदि ब्रह्म के कर्ता जान।
सत.–असत् से बाँचल बा जे, रऊए अक्षर वेद प्रधान।।37।।

त्वमादिदेवः पुरूषः पुराण–स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।। (11 । 38)।।

आदिदेव ओपुरूष सनातन, जानी, जाने योग्य निधान।
रऊए धाम पूर्ण बा भगवन, जग के आश्रा पुरूष पुरान।।38।।

वायुर्यमोऽग्निर्वरूणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।।(11 । 39)।।

बनल बियार, अग्नि यमराजे, वरूण,चन्द्र, ब्रह्मो अवतार।
प्रपितामह नमस्कार हो, सौ हजार बेर बारम्बार।। 39।।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं–सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः।।(11 । 40)।।

आगे पीछे चहुओरिया से, नमस्कार सब शक्तिमान।
रऊए सब में व्यापल बानी, राउर रूप बा सकल जहान।।40।।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं–हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं–मया प्रमादात्प्रणयेन वापि।।(11 । 41)।।

बुझ संघतिया जे हम कहनी, अनजाने, हठ, प्रेम से बात।
हे यादव, हे कृष्ण, सखा हे, एकरा मानब ना परमाद।। 41।।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं–तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्।।(11 । 42)।।

खात , पियत ओ घुमत–फिरत में, हँसी में कईनी जे अपमान।
क्षमा करीं हे भगवान हमरो, कईनी एकन्तो जे अपमान।। 42।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरूर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो–लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।(11 ।43)।।

चर–अचर के पिता जगत के, सबके गुरू, गुरू परधान।
तीनू लोक में के बा अधिका, दुसर केकर करब बखान।।43।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं–प्रसादये त्वामहमीशमीडयम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम।।(11 । 44)।।

एहसे शरीर प्राण दुनू से, करीं प्रनाम विनय से तात।
बाप पुत के मित मितके, पति पत्नि के सहेले बात।।44।।

अदृष्टपूर्वंहृषितोऽस्मि दृष्टा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं–प्रसीद देवेश जगन्निवास।।(11 । 45)।।

बिन देखल रूप देख मन हर्षे, भय से मन व्याकुल बा श्याम।
खुसी हो जल्दी रूप पहिलका, चतुर्भुजी हो जाई घनश्याम।।45।।

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।।(11 । 46)।।

गदा चक्र जे हाथ में धईले, मुकुट पहिरले चाहीं रूप।
विश्वमुर्त्ति सहस्त्रवाहु हे, चतुर्भुजी हो जाई स्वरूप।।46।।

।। श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं–रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्।।(11 । 47)।।
हो पसन्न तब आत्मयोग से, तोहरो तेजो रूप देखाय।
तोहरा छोड़ ना देखलस केहु, विराट, अनंन्तरूप, नरराय।।47।।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।(11 । 48)।।

यज्ञ, ध्यान, दान, वेदो से, ना देखी कोई रूप महान।
तोहरा छोड़ ना देखलस केहु, अर्जुन हमरो रूप जहान।।48।।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो–दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं–तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य।।(11 । 49)।।

घोर रूप के देख मत होखऽ, तनिको व्याकुल मुढ़ स्वभाव।
देखऽ रूप पहिलका अर्जुन, जे देखे के लागल चाव।।49।।

।। संजय उवाच–संजय कहले।।

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः। आश्वासयामास च
भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा।।(11 । 50)।।

ई कह कृष्ण, तुरत अर्जुन के, देहले आपन रूप देखाय।
भयभीत अर्जुन के धीरज दे, कइले शान्त तुरत नरराय।।50।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले।।

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः।।(11 । 51)।।

देख राउर ई मनुष्य रूप के, शान्त भईल मन मोह।
आपन भाव के पा गईनी हम, लाग गईल मन टोह।। 51।।

।।श्री भगवानुवाच– श्री भगवान कहले।।

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः।। (11 । 52)।।
जे अलभ्य रूप तूँ देखलऽ, अति दुर्दश ई बाटे, जहान।
दर्शन के इच्छा से देवता, रोज धरेले हमरे ध्यान।। 52।।

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा। (11 । 53)।।

वेद तपस्या, दान, यज्ञ से, ना देख सकिहें रूप महान।
देखलऽ ई जे रूप तूँ अर्जुन, परम रूप बा ई परधान।। 53।।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप।। (11 । 54)।।

अतिभक्ति ओ तत्वे जनिहें, अर्जुन देखिहें रूप हमार।
तत्व आँख से देखिहें हमरा, पईठिहें अर्जुन रूप हमार।।54।।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।(11 । 55)।।

हो निर्मोही भक्त बन हमरो, जे नित करिहें हमरे काम।
वैरभाव कुसंग सब तजिहें, पईहें अर्जुन हमरे धाम।। 55।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे विश्वरूप दर्शन योगो नामैकादशोऽध्यायः ।। 11।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योशास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद विश्वरूप दर्शनयोग नाम का ग्यारहवां अध्याय समाप्त।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

।।अथ द्वादशोऽध्यायः—बारहवां अध्याय।।

।। अर्जुन उवाच – अर्जुन पुछले।।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।(12 ।1)।।

जे ध्यान में लागल हरदम, तोहरे पूजा धारे ध्यान।
के योगी ? ज्ञानी, दुनू में निराकार जे करे प्रनाम।। 1।।

।। श्री भगवानुवाच – श्री भगवान कहले।।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्तमा मताः।।(12।2)।।

हमरे में मन राखा, भजे नित, हमरे हरदम करे बखान।
श्रद्धा से पूजेला हमरा, उत्तम योगी, अर्जुन जान।।2।।

ये त्वक्षारमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।(12।3)।।

निराकार जे ब्रह्म के अक्षर, अकथ रूप के नित्य उपास।
वश में सब इन्द्रिये कइले, एक भाव दृढ़ होके दास।।3।।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।(12।4)।।

इन्द्रिये सब जे वंश में कईले, हरदम जेकर बुद्धि एक।
योगी से हमरे के पावे, भूतन हित जे रमल विवेक।।4।।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।(12।5)।।

ऐह दुनू में अधिक कलेशित, निराकार ब्रह्म के राह।
देहिजन सब दुःख से पावे, निराकार अव्यक्त के थाह।।5।।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्सस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।(12।6)।।

हमरे में सबकर्म सौंपी के, हरदम सगुनरूप के ध्यान।
परम भक्ति से पूजे हमरा, रोज करे हमरो परनाम।।6।।

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।(12।7)

ओकरो मृत्यु संसार सागर से, करिले हमहिं तुरते उद्धार।
हमरे में चित्त लागल अर्जुन, तर जाले से जन संसार।।7।।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।(12।8)।।

ना एहमें तूँ संशय मानऽ, हमरे करऽ मन बुद्धि एक।
हमरे में निवास तूँ करबऽ, त्याग देह, हो तब एक।।8।।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।(12।9)।।

यदि चंचल मन, अचल ना होखे, यदि समर्थ ना होला ध्यान।
अभ्यासयोग से खींचऽ अर्जुन, पावे के इच्छा, हमरे ज्ञान।।9।।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।(12।10)।।

अभ्यासो यदि ना, समर्थ तब, करऽ तूँ हरदम हमरे काम।
हमरे हित काम यदि करबऽ, पईब परम सिद्धि के धाम।।10।।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।(12।11)।।

यदि असमर्थ इहो कर्म में, हमरे आश्रा योग निष्काम।
सकल कर्म फल त्यागऽ आत्मे, कर्म करऽ जीत मन, आत्म।।11।।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।(12।12)।।

अभ्यासो श्रेष्ट ज्ञान के भानऽ, ओकरो से बा ध्यान श्रेष्ठ।
सबसे श्रेष्ट त्याग फलन के, त्यागे छन में शान्ति यथेष्ठ।।12।।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करूण एव च।
निर्ममो निरहंकार समदुःखसुखः क्षमी।।(12।13)।।

द्वेषरहित जे सब जिऊ में, बनल दयाल स्वार्थ अभाव।
सुख–दुःख ममता त्याग अहं के, क्षमा करे सबके जे भाव।।13।।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।(12।14)।।

जे योगी संतुष्ट सतत् मन; दृढ़ निश्चय हो भजेला यार।
हमरे में अर्पित मन, बुद्धि, से भगत बा हमरो प्यार।।14।।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हंर्षाभर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।(12।15)।।

जेकरा से ना लोग डरेला, ना उदवेगे उहो जहान।
राग,द्वेष, भय रहित अमर्षे, हमरो प्रिय बा उहो जहान।।15।।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः।।(12।16)।।

आश रहित अति दक्ष शुद्ध जे, उदासीन सब दुःख, बा पार।
सर्व कर्मफल, त्यागी जेबा, बाड़े भक्त से प्रिये हमार।।16।।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।(12।17)।।

ना हर्षे ना द्वेष – सोच ना, ना इच्छा कुछ, करेके कार।
शुभअशुभ फल त्यागी जे से भगत बा हमरो प्यार।।17।।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः।।(12।18)।।

एके बुझले मित–शत्रु के, एके मनले मान–अपमान।
ठंढा–गरम दुःख–सुख एके, रहित कामना एक समान।।18।।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।(12।19)।।

धईले मौन संतुष्ट तनिक में, निन्दा–स्तुति बा एक समान।
गृहविहीना, स्थिर बा बुद्धि से भगत बा प्रिये महान।।19।।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।(12।20)।।

धर्मामृत जे उपर कहल बा, एकरा जे जन सेवन पान।
श्रद्धा परम करीं, तिनके हम, अतिशय मानी प्रिये प्रधान।।20।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भागवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।12।।

ऊँ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योगशास्त्र श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद भक्ति योग नाम का बारहवां अध्याय समाप्त।।

श्री गीता भाव प्रकाश

।। अथ त्रयोदशोऽध्यायः तेरहवाँ अध्याय।।

।।श्री भगवानुवाच–श्री भगवान कहले।।

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।।(13।1)।।

ई शरीर क्षेत्र हऽ अर्जुन, ऐसन कहस, तत्वी विद्वान।
जे एकरा के तत्व से जाने, ओकरे कहे क्षेत्रज्ञ महान।।1।।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।(13।2)।।

सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञे बुझऽ, सबमें ज्ञानी हमहिं महान।
क्षेत्र'क्षेत्रज्ञ ज्ञान जे अर्जुन, मोर मतबा, ज्ञान ऊ ज्ञान।।2।।

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु।।(13।3)।।

जे ऊ क्षेत्र जवन कारण से, जवन विकारे, जईसन–प्रभाव।
अर्जुन सुनुऽ कहेब तोहरा, संक्षेपे ओकर हम भाव।।3।।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।(13।4)।।

बहुत गीत में शाधु गवले, बहुत छंद में कइलस वेद।
बहुत भाँति से ब्रह्मसूत्र में, अलग–अलग समझावे भेद।।4।।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्दिद्रयगोचराः।।(13।5)।।

पांच भूत अरू अहंकार जे, दस इन्द्रिये मन बुद्धि एक।
शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध रस, अगोचर इन्द्रिये बोट विवेक।।5।।

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।(13।6)।।

इच्छा राग दुःख–सुख चेतना, धारण करे क्षेत्र सविकार।
संक्षेपे हम तोहरो कहनी, धारऽ देही, करऽ विचार।।6।।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।(13।7)।।

अभिमानो ना, नाहीं घमण्डो, गुरूपूजन मन, वचन, विवेक।
बाहर भीतर शुद्ध, अहिंसक, आत्म इन्द्रिये तन खिंचले एक।।7।।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्।।(13।8)।।

इन्द्रिय भोग त्याग, वैराग मन, तजले मन से जे हुंकार।
जनम-मरन दुःख रोग जरा के, दोषो सोचे बारम्बार।।8।।

असक्तिरनभिष्वङ्ग पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।।(13।9)।।

घर घरनी ओ बेटा धनमें, रहित आसक्ति ममता हीन।
निमन वाउर पवले बराबर, हरदम चित्त बनल समचीन।।9।।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।।(13।10)।।

अचल भक्ति से हमरे भजेले, पवित्र देशमें वास एकान्त।
विषयी जनसे रूचि ना राखे, बनल शुद्ध मन रखले शान्त।।10।।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।(13।11)।।

अध्यात्म ज्ञानमें रोजो लागल, तत्वज्ञाने देखो भगवान।
एकरे के ज्ञान कहलेबा, एहसे विपरित बा अज्ञान।।11।।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।(13।12)।।

जाने योग्य जे जानके, पईब अमृत कहेब बखान।
परब्रह्म आदि जे बाड़े, ना सत्–असत् कहलेबा जान।।12।।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।(13।13)।।

सब ओर बा हाथ, पैर, मुख, सबओर आँख, सिर बा यार।
सबओर कानो जगमें पसरल, झंपले सब, स्थिति संसार।।13।।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।(13।14)।।

सब इन्द्रिय गुण ज्ञान रहित सब, असक्त बनल भईल निर्गुन।
तीनो गुन अतीत, वन भर्ता, पोषण करे, गुण भोगे सगून।।14।।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।(13।15)।।

बाहर भीतर चर–अचर में, पूर्ण उहेबा, सुक्ष्मे अनजान।
अति समीप आ, उहो दूरे, स्थित उहों, लगहिं महान।।15।।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।(13।16)।।

एके रूप, बाँटल बा जगमे, अलग अलग बा कार।
उत्पन्न ब्रह्मा, पालन विष्णु, शंकर करीं सकल संहार।।16।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।(13।17)।।

ब्रह्मज्योति जे मायासे उपर, कहल गईल बाटे परधान।
ज्ञान, गम्य, ओ ज्ञाने तत्वे, सबके हिय बसेला जान।।17।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।(13।18)।।

क्षेत्रज्ञान ई संक्षेपे कहनी, जाने योग्य तत्व अनूप।
हमरो भक्त तत्व ज्ञान से जाने, पावे, मोर स्वरूप।।18।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकरांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।(13।19)।।

प्रकृति पुरूष दुनू के मानऽ, तूँ अनादि एकर अवतार।
राग–द्वेष ओ तीनूगुन के, जानऽ उपज प्रकृति विकार।।19।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।(13।20)।।

कार्य–करण, हेतु, प्रकृति, उपजवलस ई कहल, ईयार।
जीवात्मा सुख–दुःख भोगे में, कहल बा हेतु विचार।।20।।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।(13।21)।।

पुरूष प्रकृतिये भोग करेले, उपजल प्रकृतिये गुन तीन।
गुणसंग कारण भोगे में, सत्–सत् योनी जन्में भीन्न।।21।।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।(13।22)।।

ऐह देह में रहितो, अलगा, कहे महेश्वर, भोक्ता लोग।
पालक ओ अनुमन्ता हमहिं, परमात्मा कहलेबा योग।।22।।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते।।(13।23)।।

पुरूष प्रकृति गुणतत्व जानके, करितो जग बीच सब कार।
पुनर्जन्म ना जन्मे मानुष, ना आवेले फिर संसार।।23।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।(13।24)।।

केहु देखे ध्याने आत्मा में, केहु सांख्य योग के ध्यान।
केहु निष्काम कर्मयोग से, देखे आत्मो में भगवान।।24।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः।।(13।25)।।

दुसरो जे जाने एकरा, गुरू सुन करे उपासे।
श्रुति परायण सुने जेनर, तरिले मृत्यु संसारी फाँसे।।25।।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ।।(13।26)।।

जे कुछ जग उपजेला अर्जुन, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ के संयोग।
स्थावर जंगम सब अर्जुन, जानऽ बाटे ओकरे योग।।26।।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।(13।27)।।

नाश होत जे सब भूतन में, देखे नाश रहित भगवान।
समभाव परमेश्वर देखे, उहे देखे परम महान।।27।।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्।।(13।28)।।

समभाव स्थिति ईश्वर के, देखत आत्मे एक समान।
आत्मा से आत्मा ना नाशे, परमगति ऊ पावे, महान।।28।।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।।(13।29)।।

प्रकृति करे सब कर्म जगके, जे देखे जग में ई बात।
आत्मा के अकर्ता देखे, उहे देखे असली तात।।29।।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।(13।30)।।

जबे अलग–अलग भूतके, देखे एक भाव ईश्वर में।
तब विस्तार ब्रह्म देखेला, पावे ब्रह्म जीवन में।।30।।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते।।(13।31)।।

अनादि निर्गुन अविनाशी जे, परमात्मा के अर्जुन भाव।
रहितो देही बिच करे ना, ना लपटाला कर्मो चाव।।31।।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते।।(13।32)।।

जइसे सूक्ष्मो सगरो पसरल, ना लपटाईल बा आकाश।
वइसे सब देही में आत्मा, रहितो ना लपटाईल भास।।32।।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत।।(13।33)।।

अर्जुन, जइसे पूर्णलोक में, एके सुर्य करे प्रकाश।
वइसे क्षेत्री सकल क्षेत्रमें, करे स्वयं सम्पूर्ण प्रकाश।।33।।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्।।(13।34)।।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ भेद ऐहविधि, जे नर ज्ञान चक्षुसे पावे।
पावेला ऊ परमब्रह्म के, प्रकृति विकारे, मोक्षो पावे।।34।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रज्ञक्षेत्रविभागयोगो
नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।13।।

इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्यायोगशास्त्र श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग नामक तेहरवां अध्याय समाप्त।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

।।अथ चतुर्दशोऽध्यायः—चौदहवाँ अध्याय।।

।।श्री भगवानुवाच—श्री भगवान कहले।।

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः।। (14 ।1)।।

कहेब परम ज्ञान फेर हम, जे ज्ञानों में उत्तम ज्ञान।
जेकरा जान मुनिजन पवले, परम सिद्धि के मोक्ष महान।।1।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च।। (14। 2)।।

ऐह ज्ञानके आश्रित योगी, रूप हमार जे ज्ञानी पावे।
आदि काल ना जन्मे योगी, ना प्रलय काल दुःख पावे।।2।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिनगर्भं दधाम्याहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।(14 । 3)।।

अर्जुन माया योनी हऽ हमरे, ओइ में रोपीं चेतन बीज।
उत्पन्न जढ़-चेतन संयोगे, सब भूत बा संसार के बीच।।3।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।।(14 |4)।।

अर्जुन जेतना योनी जन्मे, सब शरीर उत्पन्न संसार।
माता त्रिगुण गर्भधारिले, रोपीं बीज पिता हम ईयार।।4।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः।
निबन्धन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्।।(14 । 5)।।

सत्–रज, तम गुण तीनु अर्जुन, उपजे यहाँ प्रकृति प्रसार।
अविनाशी आत्मा के देहे, बाँधेला तूँ करऽ विचार।।5।।

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बन्धाति ज्ञानसङ्गेन चानघ।।(14 । 6)।।

ओह तीनों में प्रकाशयुक्त बा, निर्विकार जे सत् के ज्ञान।
सुख ज्ञान आसक्ति कारण, अर्जुन बाँधे ज्ञान अभिमान।।6।।

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्।
तन्निबन्धाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्।।(14 । 7)।।

रागरूप जे रजोगुण बा, उपजे तृष्णा साथे जान।
देही के बाँधेला अर्जुन, कर्मफलनके आशे जान।।7।।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत।।(14 । 8)।।

देहीजन के मोहे वाला, उपजे तमो गुन अज्ञान।
आलस निद्रा ओ प्रमाद से, बाँधे उहो अर्जुन जान।।8।।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत।। (14 । 9)।।

सत्गुन सुख, रजगुन कर्ममें, रोजो लगावेला हे पार्थ।
तमगुन ज्ञान झाँप लगावे, परमा[illegible] के ओरी यथार्थ।।9।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा।।(14 । 10)।।

रज, तम, दाब बाढ़े सत्गुन, रज, सत् दाब बाढ़े तमगुन।
वइसे तम–सत् दाब बढ़ेला, जानऽ अर्जुन सेबा रजगुन।।10।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।(14 । 11)।।

जब अनुभव सब देह द्वारमें, उपजे अपने ज्ञान प्रकाश।
ज्ञानाक्ति जब बाढ़े तनमें, समझऽ बढ़ल सत् के भास।।11।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।(14 । 12)।।

रजके बढ़ले बाढ़े अर्जुन, लोभ प्रवृति अन्य सकाम।
मन अशान्त ललसामें लागल, उपजे विषय भोग जे वाम।।12।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्ध कुरूनन्दन।।(14 । 13)।।

तमगुन बढ़ले अप्रकाश हो, अप्रवृति, मोहो, कुरूदंन्द।
निद्रा आलस और प्रमादो, उपजे तन माने आनंन्द।।13।।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।(14 । 14)।।

सतगुन बढ़ले मरन होयजब, कईल उत्तम कर्म जहान।
पावे स्वर्ग लोक मानव से, जे आत्माके परम महान।।14।।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।।(14 । 15)।।

रजगुन बढ़ले मरे जब प्रानी, जन्मे आसक्ति घरे जहान।
तमगुन बढ़ले मरे जे प्रानी, जन्मे मुढ़योनि में जान।।15।।

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्।।(14 । 16)।।

सत्कर्म के फल वा सात्विक ,निर्मल फल ओकर बा जान।
राजस के फल दुःखे जानऽ ,तामस के फल बा अज्ञान।16।।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।(14 । 17)।।

सतगुन से उपजेला ज्ञाने, रजगुन उपजे लोभ महान।
तमगुन मोह प्रमाद बढ़ावे, औरी उपजे तन अज्ञान।।17।।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः।।(14 । 18)।।

सतगुन उपर जाले स्वर्गे, रजगुन बीच मनुष में जाय।
तमगुन नीच योनि में जन्में, पशु, पक्षी, कीट समुदाय।।18।।

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।(14 । 19)।।

जब दर्शक गुणतीन छोड़के, देखिहें नाहीं कर्ता अन्य।
गुन से परे परमात्मा माने, पावे मोर रूप अव्यक्त।।19।।

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।। (14 । 20)।।

देहीजन जब लांघ तिगुनियाँ, जनम, मरन, जरा, दुःख के।
तीनू, मुक्त पावेला प्राणी, तब पावत परमानन्द के।20।।

।। अर्जुन उवाच-अर्जुन पूछले ।।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते।।(14 । 21)।।

जे तीनो से पार भईल बा, ओकर का लक्षण भगवान।
का करे ऊ, कौन कर्म से, तीन गुनियाँ, होला अवसान।।21।।

।।श्रीभगवानुवाच- श्री भगवान कहले ।।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।। (14 । 22)।।

रजगुन,सतगुन पवला से जे, तमगुण पवलो नाहीं खेद।
ना इच्छा घटला पर अर्जुन, मिलला पर बा नाहीं भेद।।22।।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।। (14 । 23)।।

उदासीन अस बईठल हरदम, गुन से ना होले बिचलित।
गुण से गुण वर्ते जान के, स्थीर बा, ना चंचल चित्त।।23।।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।। (14 । 24)।।

स्थीर बुद्धि, सुख--दुःख एके, सोना–माटी एक समान।
प्रिय, अप्रिय एके ऊ माने, निन्दा स्तुति एक समान।।24।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।। (14 । 25)।।

मान, अपमान, शत्रु, मित्र के, तुल्ये माने एक समान।
सर्वारम्भ परित्यागी जे, गुणातीत ओकरे के जान।।25।।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणानसमतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।। (14 । 26)।।

जे अविचल भक्ति योगसे, हमरो सेवन भजनो करिले।
तीनगुन पार करत ऊ योगी, ब्रह्म प्राप्त योग्य होईले।।26।।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। (14 । 27)।।

हम अविनाशी, परब्रह्म, अमृत, नित्य, धर्म के जेबा धाम।
हमहिं अखण्ड एक रस आनंद, हमहिं आश्रा सब विश्राम।।27।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।। 14 ।।

इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्या योगशास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद गुणत्रिय विभाग योग नामका चौदहवां अध्याय समाप्त।।

ऊँ श्रीपरमात्मने नमः

अथ पंचदशोऽध्यायः।। पन्द्रहवाँ अध्याय ।।

।।श्रीभगवानुवाच– श्री भगवान कहले ।।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।। (15 । 1)।।

उपर जड़ नीचे बा डाढ़ी, पीपर कहल गईल पुरान।
ओह गाछके बेदे पत्ता, जाने वेद सेही विद्वान।।1।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। (15। 2)।।

ओकरे नीचा उपर सगरो, गुण विषय के फईलल डार।
मनुष्य कर्मसे बाँधल जाला, जड़ बा अहं, वासना ईयार।।2।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल–मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। (15। 3)।।

ऐसन रूप ना पावल जाला, आदि अन्त ना स्थिर ईयार।
ऐह पीपर के जड़ बा स्थिर, काटे! दृढ़ वैराग्य हथियार।।3।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं–यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरूषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। (15 । 4)।।

जे पद गइले लौट ना आवे, ओकरे चाहीं करेके जोह।
जेकरा से पसरल ई गछिया, पुरुष पुरातन शरणे जोह।।4।।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा–अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। (15 । 5)।।

संगदोष ओ मानमोह जीत, नष्ट कामना हरदम ध्यान।
सुख–दुःख, द्वन्द छोड़ भक्त जे, पावेला पद परमं महान।।5।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्।।(15 । 6)।।

जहाँ ना चन्द सूर्य परकाशे, ना परकाशे अग्नि महान।
जहवां जाके लौट ना आवे, से हऽ हमरो परमम् धाम।।6।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। (15 । 7)।।

ऐह देह में हमरे अंशे, बाटे सनातन आत्मा जान।
माया मनले छवो इन्द्रिये, खींचे अपने ओरी ध्यान।।7।।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।। (15 । 8)।।

एक देह तज जबे आत्मा, धारण दोसरो देह ईयार।
गमक उड़ाके चले वायु जस, वइसे मन इन्द्रिये के भार।।8।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।। (15 । 9)।।

सून, सुंघ के, देख चाटके, छुके आत्मा करे ज्ञान।
मन के आश्रा बनाके प्राणी, सेवन करे ऊ विषय जहान।।9।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। (15 । 10)।।

छोड़त देह, विषयो भोगत, तीनगुन युक्त बा अज्ञान।
ना जाने आत्मा ऊ कबहुँ, देखे ज्ञानी नेत्र महान।।10।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।। (15 । 11)।।

योगी यतन तन, अपने देखे, आत्मा के ऊ तत्व विधान।
अज्ञानी अपवित्र ना देखे, यत्नो आत्मा कबहुँ जान।।11।।

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।। (15 । 12)।।

सूर्यो बीच तेज जो सगरो, अखिल जगत के करे प्रकाश।
चन्द आग बीच जो तेज बा, हमरे जानऽ तेज प्रकाश।।12।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।। (15 । 13)।।

धरती पईठ हम अपने बल से, धारण भूत करीं सब जान।
अमृतरस बन चाँद में हमहिं, करीं पुष्ट औषधि के जान।।13।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। (15 । 14)।।

हमहिं पचाईं चारो अन्नके, प्राण–अपान संयोगे जान।
सब प्राणीके देहे आश्रित, वैश्वानर हम अगिन महान।।14।।

सर्वस्स्य चाहं हृदि सन्निविष्टो–मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो–वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। (15 । 15)।।

सबके हृद्रयमें अन्तर्यामी, स्मृति, संशयवेदों, ज्ञान।
हम कर्त्ता वेदान्तो बानी, वेदो के जानकरो जान।।15।।

द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। (15 । 16)।।

नाशवान अविनाशी बाड़े, दू प्रकार के पुरूष जहान।
सकल शरीर नाशवान बा, अविनाशी जीवात्मा जान।।16।।

उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। (15 । 17)।।

उत्तम पुरूष तऽ बाड़े दोसर, पईठल तीनू लोक में जान।
पोषण करे ऊ बन परमात्मा, अविनाशी ईश्वर कह जान।।17।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः।। (15 । 18)।।

हम अतीत सब नाशवान से, जीवात्मो से उत्तम जान।
एहसे लोक वेदमें हमरे, परसिद्धि पुरूषोत्तम नाम।।18।।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरूषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।। (15 । 19)।।

अर्जुन ऐह प्रकार जे ज्ञानी, परूषोत्तम हमरा माने।
ऊ सर्वज्ञ भजे हमरा के, सब प्रकार मोहि जाने।।19।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत।। (15 । 20)।।

बड़ा गुप्त हम शास्त्रो कहनी, निष्पापी तूँ जानऽ पार्थ।
बुद्धि से एकरा जाने ज्ञानी, तत्व जान होले कृतार्थ।।20।।

इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्मविद्यायोगशास्त्र श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद परूषोत्तम योग नामका पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरूषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः।। 15।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

।।अथ षोडशोऽध्यायः– सोलहवाँ अध्याय ।।

।। श्रीभगवानुवाच--श्री भगवान कहले ।।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।(16 । 1)।।

निडर, शुद्ध, ज्ञान योग में, स्वाध्याय, यज्ञ, तप, दान।
मन अन्तः शुद्धि तन के, दबले इन्द्रिये आपन ज्ञान।।1।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। (16 । 2)।।

कोमल, सत्य, अहिंसक, अहथीर, त्यागी, क्रोध, लोभ विहीन।
दया, अनिन्दा सब भूतन में, लोके लाज, व्यर्थ विधहीन।।2।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।(16 । 3)।।

तेज, क्षमा, धैर्य, शुद्ध जे, अद्रोही, मन ना अभिमान।
दैवी सम्पद् पावल नर के, लक्षण अर्जुन बड़ा महान।।3।।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्।। (16 । 4)।।

पाखण्डी, दर्पी, अभिमानी, क्रोधा, घमण्ड, कठोरे बात।
आसुरी सम्पद् ई हऽ अर्जुन, पईब लछन आसुरी गात।।4।।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव।। (16 । 5)।।

दैवी सम्पद मुक्ति खातिर, मानलबा, आसुरी बन्धन।
शोक करऽ मत, दैवी पवले, तूहूँ अब! कुरुनन्दन।।5।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।। (16 । 6)।।

दो तरहा के जग में भूतन, एक असुर एक दैवी गून।
दैव स्वभाव बहुत हम कहनी, असुर स्वभाव हमरे से सून।।6।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।। (16 । 7)।।

प्रवृति निवृति ना आसुरी जाने, ना शुद्धि ना श्रेष्ठ आचार।
उनका में तनिको ना होला, सत्य बात के करीं विचार।।7।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।। (16 । 8)।।

उहो कहे जग झूठ, अनीश्वर, जग जनमल, स्त्री–पुरुष संयोग।
एहसे काम, भोग करे के, एकरा छोड़ ना बाटे योग।।8।।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।(16 । 9)।।

ईहे झूठ ज्ञान पकड़ले, नष्ट ज्ञान, बुद्धि हो मन्द।
उग्रकर्म अपकार जगत के, उत्पन्न होले नाशी चन्द।।9।।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।। (16 ।10)।।

दम्भ, मान, मद, कठीन कामना, आश्रा गहले जे अज्ञान।
काम, मोहवश झुठो गहले, भ्रष्ट आचरण, सकल जहान।।10।।

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।। (16 । 11)।।

अन्तकालो बेअन्ते चिन्ता, ओकरे आश्रा करत जहान।
भोग कामना लागल हरदम, ओकरे माने आनंन्द महान।।11।।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान।। (16 । 12)।।

सौ आश के फाँस में बाँधल, काम क्रोध भोगके जान।
अन्याये धन संचय चाहे, धन चाहे ऊ वेपरमान।।12।।

इदमद्य मया लब्धामिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।। (16 । 13)।।

पवनी आज, फेर पायब हम, इहे मनोरथ उनका जान।
एतना धन बा आगे होई, हरदम मनमें इहे भान।।13।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।। (16 । 14)।।

हमरे से मरले ऊ दुश्मन, दुसरो के मारब हम जाय।
हम ईश्वर भोगी ओ सिद्धि, हम बलवान सुखी समुदाय।।14।।

आढयोऽनभिजनवानस्मिकोऽयोऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।। (16 । 15)।।

बड़ाधनी कुटुम्बी बानी, हमरा अईसन बाटे कवन।
यज्ञ करब ओ दान देब हम, कह अज्ञाने मोहित जवन।।15।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ।। (16 । 16)।।

मोह जाल में फाँसल मनुआ, भरमल काम भोगन में।
विषयभोग आसक्ते पापी, गिरहें घोर नरक में।।16।।

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।(16 । 17)।।

अपना के बड़का ऊ माने, धनमानी अभिमानी अवतार।
शास्त्ररहित यज्ञ नामले, पाखण्डे करेले यज्ञो कार।।17।।

अहंकार बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।। (16 । 18)।।

अहँकार, बल भरल, कामना, भरल क्रोध, मन कुविचार।
पर निन्दक हमरो ना बुझे, दोसरो देहे शत्रु बेबहार।।18।।

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।। (16 । 19)।।

ओह कुकर्मी, पापी द्रोही, जे अधम नर बा संसार।
असुर योनी गिराईं ओकरा, ऐहसे जन्मे बारम्बार।।19।।

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्।। (16 । 20)।।

जनम–जनम ऊ असुरमें जन्मे, ना पावे कबहुँ हमरा के।
ओहसे नीच, नीच गति पावे, अर्जुन घोर नरक उनकाके।।20।।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्।। (16 । 21)।।

काम, क्रोध, लोभ ई तीनो, एकरा जानऽ नरक द्वार।
आत्मा के ई नाश करेला, चाहीं त्यागे तीनू ईयार।।21।।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।(16 । 22)।।

तीनो नरक द्वार मुक्त नर, करे आचरण जन कल्याण।
एहसे जाय परमगति से, अर्जुन हमरे परम महान।।22।।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। (16 । 23)।।

त्याग शास्त्रविध अपने मने, कईले सकल कर्म जहान।
ना पावे ऊ सिद्धि, परमगति, ना पावे ऊ सुखो जान।।23।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।(16 । 24)।।

एहसे शास्त्र, कर्म–अकर्म के, तोहरा खातिर बा परमान।
शास्त्र विधानकर्म योग्य बा, ओकरे जानऽ कर्म महान।।24।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम
षोडशोऽयायः।।16।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र श्री
कृष्ण अर्जुन संवाद दैवासुर संपद् विभाग योग
नाम का सोलहवाँ अध्याय समाप्त।।

ॐ श्रीपरमात्माने नमः

।। अथ सप्तदशोऽध्यायःसत्रहवाँ अध्याय ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पुछले ।।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।। (17 ।1)।।

जे शास्त्र विधि छोड़ कृष्ण हे, श्रद्धा से देवो में लीन।
उनकर निष्ठा कवन कहावे, सत्, रज, तम् जे गुन बा तीन।।1।।

।। श्रीभगवानुवाच–श्री भगवान कहले ।।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु।। (17 । 2)।।

स्वभावे उत्पन्न होला श्रद्धा, सात्विक, राजस, तामस जान।
देही के उपजे अपने गुन, सुनऽ हमरो से मति मान।।2।।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरूषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। (17 । 3)।।

अर्जुन सबके सरधा जईसन, अन्तःकरण सत्व अनुरूप।
श्रद्धामय जे पुरूष बा जईसन, अपनो बा ऊ वइसने रूप।।3।।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।। (17 । 4)।।

सात्विक जन देवो के पूजे, राजस राक्षस यक्ष समेत।
तामसी जन पूजे औरो के, नमन करे ऊ भूतो प्रेत।।4।।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहँकारसँयुक्ताः कामरागबलान्विताः।। (17 । 5)।।

बिना शास्त्र बिध करे घोरतप, भरल घमण्ड दम्भ से देह।
काम राग बल भरलो उनका, अभिमानो में बाटे सिनेह।।5।।

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तः शरीरस्थं तान्विद्धयासुरनिश्चयान्।।(17 । 6)।।

देहधारी ओ सब भूतन के, हमरो दुःखी करे हीय जान।
ओह अज्ञानी जनके जानऽ, बा स्वभाव आसुरी मान।।6।।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु।। (17 । 7)।।

आहार, यज्ञ, तप, दान तीन विध, सबके अलग अलग प्रिय जान।
तीनो के जे तीन भेद बा, सुनऽ अलग अलग परमान।।7।।

आयुः सत्त्वबलारोग्य–सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या–आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।(17 । 8)।।

बल, बुद्धि, आयु, निरोगो राखे, बढ़वे सुख रस चिक्कन अन्न।
सात्विक के भोजन ई रूचिकर, मन स्थिर स्वभाव प्रसन्न।।8।।

कट्वम्ललवणात्युष्णातीक्ष्णरूक्षाविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।(17 । 9)।।

कडुआ, खट्टा, तेज नून अति, गरम, रूच्छ, दाहक अति ईयार।
अत्पन्न रोग, दुःख करे जे, राजस जन के रूचिर आहार।।9।।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमापि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।। (17 । 10)।।

अधपक, बिनरस, जूठ, अपावन, बसिया जे अपवित्र आहार।
सखरियाह सब उनका प्रिय हो, तामसी जनके ई बेबहार।।10।।

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः सामाधाय स सात्त्विकः।। (17 । 11)।।

शास्त्र नियत सब यज्ञकर्म जे, कर्त्तव्य जान कर मन समधान।
निष्कामी के कईल यज्ञ जे, से यज्ञ बाटे, सात्विक जान।।11।।

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।। (17 । 12)।।

जे यज्ञ, अभिमाने होला, चाहे फलके रखले आश।
ओह यज्ञके राजस जानऽ, अर्जुन एकरा करऽ विश्वास।।12।।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।। (17 । 13)।।

बिधि विहीन बिना अन्नके, बिना मंत्र दक्षिणाहीन यज्ञ।
बिन श्रद्धाके यज्ञ जे होला, ओकरे कहे तामसी अज्ञ।।13।।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। (17 । 14)।।

देव गुरू ब्राह्मण ज्ञानीजन, पूजन करे पुरूष जे ईयार।
शुद्ध सरल ब्रह्मचर्य अहिंसक, देही तपके कहल बा कार।।14।।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। (17 । 15)।।

जे उद्वेग करे ना वाणी, प्रियकर हितकर वाक्य यथार्थ।
शास्त्र पठन जापनमें लागल, ओकरे कह तप वाक्य पुकार।।15।।

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। (17 । 16)।।

मन प्रसन्न शान्त मौन जे, वशमें मन चिन्ते भगवान।
आत्म शुद्धि जे राखे हरदम, मानस तप ओकरे के जान।।16।।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।। (17 । 17)।।

बिन फल चाह पुरूष निष्कामी, परम सरधा तप कईल महान।
कहल पहिलका तीनू तप जे, ओकरे सात्विक तप कह जान।।17।।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।। (17 । 18)।।

जे तप पूजन आदर खातिर, करेले नर केवल पाखण्ड।
क्षणिक अनिश्चित फलबा ओकर, तेकरे कहलस राजस खण्ड।।18।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।। (17 । 19)।।

जे तप हठ आत्म शरीर से, पीड़ा संग चाहत नुकसान।
परनाशी जे तप, होला, से तप कहल तामसी जान।।19।।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।। (17 । 20)।।

दान देहल कर्त्तव्ये माने, देश काल पात्र विद्वान।
अनुपकारी दान जे देला, ओकरे कहेला सात्विक दान।।20।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।। (17 ।21)।।

प्रति उपकारे दान करे जे, अथवा फलके रखले आश।
मन क्लेशित दान जे देला, ओकरे कहे राजस आभास।।21।।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।।(17।22)।।

बिन सत्कारे दान जे देला, असमय अपात्र जेना जान।
तिरस्कार से दान कईल जे, ओकरे कहे तामसी दान।।22।।

ऊँ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन बेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।(17।23)।।

ऊँ तत् सत् नाम ब्रह्मके, तीनू कहल वेद प्रमान।
ओहसे ब्राह्मण वेद यज्ञ सब; रचले आदिकाल भगवान।।23।।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।(17।24)।।

एहसे वैदिक विधान जानके, यज्ञ तपस्या औरी दान।
शुरू ऊँ बोल करेले, हरदम ओईम् ब्रह्मके ध्यान।।24।।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।(17।25)।।

तत् ब्रह्म बिन फल चहितो, करेले सब यज्ञ, तप, दान।
बहुत कार कल्याणी करितो, इच्छा राखे मोक्षके ध्यान।।25।।

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।(17।26)।।

सत् के सदा सत्यभाव में, श्रेष्ठभाव में होय प्रयोग।
अर्जुन उत्तम कर्मकार में, सत् शब्द के हो उपयोग।।26।।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।(17।27)।।

यज्ञ तपस्या दानमें स्थिति, ओकरे कहलस सत् बा जान।
ब्रह्मकर्म निःश्चय सत्य बा, ऐसन कहले बा विद्वान।।27।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।(17।28)।।

बिन श्रद्धा तप, दान, हवन जे, औरी कईल जे कर्म जहान।
अर्जुन असत् कर्म कहावे, ना फल जिअत, मुअलो ना जान।।28।।

ऊँ तत्सदिति श्रीमदभवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योशास्त्रे श्रीकृष्णअर्जुन संवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः।।17।।

ऊँ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योग शास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद श्रद्धात्रय विभाग योग नामका सतरहवाँ अध्याय समाप्त।।17।।

ऊँ श्रीपरमात्माने नमः

।। अथाष्टादशोऽध्यायः–अठारहवाँ अध्याय ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन पुछले ।।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।।(18।1)।।

संन्यास त्याग हम जाने चाहीं, अलग अलग जे बाटे तत्व।
महाबाहु ओ वासुदेव हे, केशिनिषूदन चाहीं तत्व।।1।।

।। श्रीभगवानुवाच–श्रीभगवान कहले ।।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयोविदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।।(18।2)।।

काम्यकर्म त्याग, के केतना, पंडितजन कहले संन्यास।
विचारवान सब कर्मफलन के, त्याग, के कहले त्याग आभास।।2।।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।।(18।3)।।

केतना विद् कह कर्महऽ दोखहा, एहसे बा ई त्यागे योग्य।
दुसर ज्ञानी कहले नाहीं, यज्ञ, दान, तप छोडे योग्य।।3।।

निश्चयं श्रृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः।।(18।4)।।

त्याग विषय तूँ तीनू सूनऽ, हमरो निश्चय पुरूष श्रेष्ठ।
तीन भेद कहल गईल बा, अर्जुन जानऽ एकरा चेष्ट।।4।।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।(18।5)।।

यज्ञ, दान, तप कर्म करेके, नईखो ई त्यागे योग।
यज्ञ, दान, तपकर्म, सुकर्म बा, करे पवितर, ज्ञानी लोग।।5।।

एतान्यपि तु कर्माणि संङ्गंत्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।(18।6)।।

फल आसक्ति तीनू कर्मकें, तीनू त्याग, कर्तव्ये कर्म।
पार्थ उत्तम मत्त वा निश्चित, मानऽ हमरो मत्तके धर्म।।6।।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।।(18।7)।।

नियतकर्म कबहुँ ना अर्जुन, नाहीं बा ई त्यागे योग।
मोहे एकरा जे त्यागेला, ओकरे कहे तामसी लोग।।7।।

दु:खमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।(18।8)।।

देह क्लेश भय, कर्मो दु:ख बुझ, त्यागे कर्म जे पुरूष जहान।
ओकरे राजस त्याग कहेला, त्यागो फल पावे ना जान।।8।।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
संङ्गंत्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।।(18।9)।।

नियत कर्म कर्तव्य हऽ अर्जुन, ऐसन जे समझे विद्वान।
जे आसक्ति, फलो त्यागे, मानल त्याग, सात्विक जान।।9।।

न द्वेष्टयकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।।(18।10)।।

ना सिहाय अकुशल कर्म से, कुशलकर्म ना आसक्ति जान।
सत् में पईठल संशयहीना, ज्ञानवान त्यागी से जान।।10।।

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।।(18।11)।।

देहधारीके ना होई सम्भव, त्यागी, पूर्ण कर्म संसार।
जे नर कर्मफल के त्यागी, ऊहे कहावे त्यागी ईयार।।11।।

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित्।।(18।12)।।

ईष्ट, अनिष्ट, मिलल कर्मफल, कामी तीनों मुअलो बाद।
त्यागी पुरूष कबहुँ ना पावे, कर्मफलन के जे बा स्वाद।।12।।

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।।(18।13)।।

सकल कर्मके सिद्धि खातिर, कहले सांख्य पांच सिद्धान्त।
हमरो से सब जानऽ अर्जुन, पाँचो हेतु सुभद्राकान्त।।13।।

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।।(18।14)।।

कर्ता करण जे अलग अलग बा, ऐह आधार के नाना भेद।
अलग–अलग जे दैवी चेष्टा, ओकरे कहलस पंचम् हेतु।।14।।

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः।।(18।15)।।

मन शरीर वाक द्वारा जे, न्याये अन्याये, शुरू करे कर्म।
ओकरे पाँचो हेतु कारण, ऐह विषयके मनिहऽ मर्म।।15।।

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।।(18।16)।।

ऐसनो भईला पर जे नर, केवल आत्मा कर्त्ता देखो।
अज्ञानी विकृति बुद्धि से, कबहुँ ऊ ना हमरा पेखे।।16।।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।।(18।17)।।

जेकरा में ना भाव कर्त्ता के, जेकर बुद्धि ना लपटाय।
सबके मार, ना मारे केहु, ना बधिहें ऊ पापे जाय।।17।।

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः।।(18।18)।।

ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय ई तीनों, कर्म प्रेरक के हऽ संयोग।
कर्ता, करण, क्रिया ई तीनो, कर्म संग्रहके धईले योग।।18।।

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।।(18।19)।।

ज्ञान कर्म कर्त्ता जे तीनों, कहलस सांख्य तीनगुन भेद।
ओकरा के ध्यान से सुनऽ, कहेब हम ओकर परभेद।।19।।

सर्वभूतेषु येनैकं भांवमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।।(18।20)।।

जेह ज्ञान से अलगे अलगे, सब तन देखे अमर भगवान।
विभक्त तन अविभक्त जे देखे, ओकरे सात्विक ज्ञानो जान।।20।।

पृथक्त्वेन तु यंज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।(18।21)।।

जे ज्ञाने, सकल भूतन में, अलगे नाना भावो जान।
बाँटल अलग–अलग ऊ जाने, ओकर राजस जानऽ ज्ञान।।21।।

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्।।(18।22)।।

जे ज्ञान आसक्ति पूर्ण तन, बिन युक्ति अतत्वो ज्ञान।
तुच्छ ज्ञान ओकरे तूँ जानऽ ओकरे कहलबा तामस ज्ञान।।22।।

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।।(18।23)।।

संगरहित जे नियत कर्म बा, फलके ना ऊचाहत धार्म।
राग द्वेष रहित कर्म जे, ओकरे कहे सात्विक कर्म।।23।।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।।(18।24)।।

जे फल आश बहुत परियासे, अहंकार से कईल जे काम।
ओह कामके कहलबा जानऽ, ओकर जगमें राजस नाम।।24।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।।(18।25)।।

बिन विचार परिणाम, ओ हिंसा, हानि लाभ ना बलहिं विचार।
अज्ञाने काम शुरू करे जे, ओकरे कहेला तामस ईयार।।25।।

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।(18।26)।।

तज कुसंग, अहंबोल ना, धीरज साहस भरलबा देह।
सिद्धि-असिद्धि निर्विकारी, कर्त्ता कहावे सात्विक सेह।।26।।

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।।(18।27)।।

रागी लोभी फल अभिलाषी, हर्ष शोकमें डुबल ईयार।
हिंसक मन, अशुद्ध आचरण, राजस कर्त्ता के बेबहार।।27।।

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।।(18।28)।।

धूर्त, घमण्डी, हरे जिवीका, मुर्ख वेचित्त, आलसी ज्ञान।
दीर्घसूत्री, शोकी जे कर्त्ता, ओकरे कहे तामसी जान।।28।।

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं श्रृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय।।(18।29)।।

अर्जुन! बुद्धि, धारण शक्ति, गुण कारण से बाटे तीन।
हमरे कहल पूरा तूँ सुनऽ, तीन भेदजे बाटे भिन्न।।29।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः, सा पार्थ सात्त्विकी।।(18।30)।।

प्रवृति–निवृति, भयओ निभर्य, बन्धन मोक्ष जे जाने ज्ञान।
कर्म अकर्म जे जाने अर्जुन, ओकरे सात्विक बुद्धि जान।।30।।

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।(18।31)।।

धर्म अधर्म जे बुद्धि ना जाने, कर्म अकर्म ना यथार्थो पार्थ।
उहे राजस बुद्धि कहावे, जनिहऽ एकरा पूर्ण यथार्थ।।31।।

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।(18।32)।।

तमसे घेरल जे, अधर्म के, धर्में मानेला हे पार्थ।
सब अर्थों के उल्टे माने, उहे बुद्धि तामसी भास।।32।।

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।(18।33)।।

व्यभिचार – रहित योग साधना, मन, प्राण, इन्द्रिये निष्काम।
ध्यानयोग के धईल धारणा, अर्जुन, ओकरे सात्विक नाम।।33।।

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।।(18।34)।।

फल इच्छा आसक्ति धारणे, धारण अर्थों, धर्मों, काम।
जनिह पार्थ ओह धारण के, ओकर बाटे राजस नाम।।34।।

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।(18।35)।।

कुत्सित बुद्धि धारण द्वारा, निद्रा, भय, चिन्ता, उन्माद।
ना छोड़े दुःख मद जे प्रानी, पार्थ तामसी धारण याद।।35।।

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।।(18।36)।।

अब सुख तीन सुनऽ हमरा से, जे सुख भजन ध्यान अभ्यास।
किर्तन से दुःख अन्तो होला, अर्जुन एकरा करऽ विश्वास।।36।।

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।(18।37)।।

जे सुख पहिले विष समलागे, अमृते बा जेकर परिणाम।
आत्म, बुद्धि प्रसाद उपज जे, कहलस से सुख सात्विक जान।।37।।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।(18।38)।।

इन्द्रिये विषय संयोगे जे सुख, भोगे फल अमृत सा भान।
परिणामो विष समान जे, ओकरे कहल राजस् बा नाम।।38।।

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।(18।39)।।

जे सुख पहिले भोग काल में, परिणामो में आत्मा मोह।
निद्रा आलस ओ प्रमाद से, उपजे सुख, कह तामस ओह।।39।।

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः।।(18।40)।।

नर, धरती ना, स्वर्गे देवो, कोई प्रानीना गुण से हीन।
प्रकृति उपज तीनो गुण जे ना कोई बाड़े एहसे भिन्न।।40।।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।।(18।41)।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्रके, कर्म–स्वभाव से बाँटल धर्म।
गुणसे बाँटल वा अर्जुन सब एकरा जनिहऽ बड़का मर्म।।41।।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।(18।42)।।

शमन दमन तप इन्द्रिये शुद्धि, शान्त हृदय वा क्षमा शरीर।
आस्तिक ज्ञान विज्ञानो जाने, ब्राह्मण कर्म स्वभाव लकीर।।42।।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।(18।43)।।

शूरवीरता, तेज धैर्य जे, चतुर युद्ध ना भागेजान।
दानी, स्वामी भाव जे राखे, क्षत्रीय कर्म स्वभाविक जान।।43।।

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।।(18।44)।।

खेती गोपालन व्यापारे, कर्म स्वभाविक वैश्यो जान।
सेवा सबके करे कर्म जे, शुद्र स्वभाविक कर्मो भान।।44।।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः ससिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।।(18।45)।।

आपन–आपन कर्म में लागल, नर पावे परमसिद्धि जे गून।
अपने कर्मसे सिद्धि कइसे, से विधि तूँ हमरा से सून।।45।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।(18।46)।।

जेकरा से जनमल सब प्राणी, जेकरे से व्यापल संसार।
आपन कर्मसे उनको पूजे, पावे परम सिद्धिके ईयार।।46।।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।(18।47)।।

आपन धर्म श्रेष्ठ अति अर्जुन, दूसर धरम निमनो गुणहीन।
नियत स्वधर्म कर्म करत नर, अपने कर्म से पापविहीन।।47।।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।(18।48)।।

नियत कर्म यदि बाटे दोखहा, अर्जुन ना ई त्यागे योग्य।
सब कर्मबा दोषे झंपाईल, जैसे आग धूआँ संयोग।।48।।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।।(18।49)।।

सबछ़न बुद्धि रहित आसक्ति, विजीत आत्मा, च़ाहत हीन।
सांख्ययोग संन्यासे द्वारा, पावे परम सिद्धि प्रवीन।।49।।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।(18।50)।।

सिद्धि पवले कइसे पावे, अर्जुन परमब्रह्म के ज्ञान।
तत्वज्ञान के परमतत्व के, हमरे से संक्षेपे जान्।।50।।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।(18।51)।।

निर्मल बुद्धि युक्त, एकान्ती, अल्पे भोजन वशतन बान।
मन वाणी काया वैरागी, पवले दृढ़ वैरागे जान।।51।।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।।(18।52)।।

हरदम ध्यान योग में लागल, आत्मा के वश कईले ध्यान।
औरी शब्द विषय त्याग के नष्टों राग द्वेषके जान।।52।।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।(18।53)।।

अहंकार, बल, घमण्ड, कामना, क्रोध, संग्रह, त्याग, महान।
ममताहीन शान्त ह्रदय से, पावे भक्ति परा महान।।53।।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।(18।54)।।

मन प्रसन्न बा ब्रह्ममें अहथीर, ना शोक ना इच्छा जान।
सब भूतन में सम दृष्टि बा, पावे भक्ति परा महान।।54।।

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।।(18।55)।।

परम भक्ति से तत्व हमार जे, समझे और प्रभावो जान।
ओहसे हमरो तत्व जान के, पइठे तुरत हमरे में जान।।55।।

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।।(18।56)।।

हमरो आश्रा करितो हरदम, करे काम सब निष्काम।
हमरो कृपा प्राप्त सब होला, अविनाशी सनातन धाम।।56।।

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।(18।57)।।

सकलकर्म मनसे हमरेमें, अर्पण कर मन धार ध्यान।
बुद्धियोग के कर अवलम्बन, हरदम मनमे हमरे ध्यान।।57।।

मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि।।(18।58)।।

हमरे कृपा सब दुर्ग तूँ तरब, कटब सकल दुःख संसार।
अहंकार वश यदि ना सुनबऽ, नष्ट भ्रष्ट हो जईब ईयार।।58।।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।।(18।59)।।

अहंकार वश यदि ऐसन मनब, करेब युद्धना सोचत बात।
तोहरो निश्चय झूठा होई, प्रकृति नियोजित लगब तात।।59।।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत्।।(18।60)।।

जेह कर्मके मोह विवश हो, ना चहबऽ अर्जुन करेके काम।
आपन स्वभावकर्म से बाँधल, परवश हो से करब काम।।60।।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।(18।61)।।

ईश्वर सबके हृदययन्त्र में, अर्जुन स्थिति उनका जान।
मायासे भ्रम उपजा के, नाचे प्राणी पुतली जान।।61।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।(18।62)।।

अर्जुन सबभाव से जाके, उनके शरण करऽ तूँ प्राप्त।
उनके कृपा शान्त, सनातन, पईब परम शास्वत पद आप्त।।62।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।।(18।63)।।

कहनी गुप्तज्ञान गुप्त अति, तोहरो ले हम पूर्ण प्रकार।
जे इच्छा वईसन तूँ करिह, सबके पूरा सोच विचार।।63।।

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।(18।64)।।

सबसे गुप्त परम वचन मम, फिर हमरे से सुनऽ पार्थ।
हमरो अतिप्रिय बाड़ऽ एहसे, फिर तोहरो हित कहेब यथार्थ।।64।।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।(18।65)।।

हमरे भक्त बन, मन में हमहीं, हमरे नमन करऽ परनाम।
सत्य प्रतिज्ञा बा ई हमरो, बाड़ तूँ मम सखा महान।।65।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।(18।66)।।

सब धर्मनके छोड़ भक्त बन, हमरे शरण तूँ जोहऽ पार्थ।
तोहरो पापमुक्त करब सब, शोक करऽ ना, सत्य यथार्थ।।66।।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।(18।67)।।

भक्ति रहित ओ तपविहीन जे, ना सूनेके इच्छा, ना ध्यान।
उनको गीता कहिहऽ ना कबहीं, जे हमरो निन्दा करे बखान।।67।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामवैष्यत्यसंशयः।।(18।68)।।

जे नर परमप्रिति से हमरो, भक्त के कहिहें ई गुप्तज्ञान।
बिन संशय हमरे ऊ पईहें, जानऽ गीता, बाटे परमान।।68।।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।(18।69)।।

उनका से बढ़ नर ना कोई, प्रियकर्त्ता मम बाडे संसार।
ना उनकासे बढ़ कोई दुसर, धरती पर जे करे प्रचार।।69।।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।(18।70)।।

जे दुनूके धर्म संवाद बुझ, करिहें गीता अध्यन ध्यान।
पूजित ज्ञानयज्ञ हम होखब, हमरो मत ऐसन हऽ जान।।70।।

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।।(18।71)।।

जे श्रद्धा से दोष मुक्त हो, सुनिहें गीता शास्त्र पुराण।
मुक्त पाप हो, परम कर्म से, पईहें लोक श्रेष्ट महान्।।71।।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।।(18।72)।।

का तूं सूनलऽ अर्जुन एकरा, एक चित्त हो वचन महान।
कहऽ धनंजय ? तोहरो कुल्ही, नष्ट भईल का मोह महान।।72।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले ।।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।।(18।73)।।

ॐ श्रीपरमात्मने नमः–हरि ॐ तत् सत्
अथद्वितीयोऽध्यायः

।। दुसर अध्याय ।।

संजय उवाच– संजय कहले ।।

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ।। (2।1)।।

करूणा भरल देखा कृपाकर,आँख में भरले उनका लोर।
शोकी अर्जुन के तब कहले,ई मधुसूदन ई वयन विभोर ।। 1 ।।

।। श्रीभगवानुवाच– भगवान कहले ।।

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।(2)।।

विषम जगहिया कौने कारण, तोहरा भईल ई अज्ञान।
ई ना गुरूजन कईनी कबहिं, ना स्वर्गो ना किर्ति जान ।। 2 ।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्वययुपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।। (2।3)।।

ऐह घाड़ी हिजड़ापन अर्जुन,तोहरों योग्य ना होई।
तुच्छ हिय के छोड़ दुर्बलता,लड़ऽ उठऽ, जे होई ।। 3 ।।

।। अर्जुन उवाच–अर्जुन कहले ।।

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।(2।4)।।

रउए कृपा मोह नष्ट हम, पवनि आपन शुधि महान।
संशयगत, स्थीर, हम भगवन, मानेब राउर वचन महान।।73।।

।। संजय उवाच–संजय कहले ।।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।।(18।74)।।

ऐह प्रकार हम कृष्ण–अर्जुन के, सूननी ई अद्भुत संवाद।
रहस्ययुक्त रोमांचित जे बा, सूननी जे, सब हमरो याद।।74।।

व्यासप्रसादाच्छुतवानेंतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथ्यतः स्वयम्।।(18।75)।।

व्यास कृपा हम परम गुप्त ई, सूननी कहत ई योग साक्षात्।
स्वयं योगेंश्वर कृष्ण से सूननी, रहस्य गुप्त कहले जे आप्तं।।75।।

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।।(18।76)।।

राजा! कृष्ण–अर्जुन के बतिया, बा पुन्यकारक संवाद।
बार–बार हम याद पार के, हर्षित हई, जब पड़ेला याद।।76।।

तच्च संस्मृतय संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।।(18।77)।।

राजा! हरीके रूप अलौकिक, जब–जब पड़जाला ऊ याद।
बड़ा चकित तब हमहुँ होईले, फेर–फेर हर्षित, होला गात।।77।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।(18।78)।।

जहाँ योगेश्वर कृष्ण हो अपने, जहाँ धनुर्धर पार्थ महान।
वहीं विजय, श्री, अचल निति, धन, हमरो मत बा ई परमान।।78।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः।।18।।

ॐ इति श्री गीता भाव प्रकाश ब्रह्म विद्या योगशास्त्र श्री कृष्ण अर्जुन संवाद मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त।।18।।

हरि ॐ तत् सत्



लेखक की अन्य रचनाएँ :-

1.	राष्ट्र पुरूष वीर कुँवर सिंह	–	हिन्दी पद्य
2.	भारत की महान बेटी	–	हिन्दी पद्य
3.	गीता भाव प्रकाश	–	भोजपुरी पद्य
4.	मेघदूत (कालीदास)	–	भोजपुरी
5.	अष्टावक्र गीता	–	मैथिली पद्य
6.	भोजपुरी पद्य संग्रह	–	भोजपुरी पद्य
7.	अष्टावक्र गीता	–	मैथिली पद्य
8.	श्रृंगार सशक	–	मैथिली पद्य
9.	नीति शतक	–	मैथिली पद्य
10.	नर्स हिन्दी उपन्यास	–	हिन्दी
11.	बलिदानी	–	भोजपुरी

ई कह अर्जुन रण, भुमि में, बईठले रथ मन हीन।
धनुषवान सब छोड़ समूचा, भईले अपने कांतर दीन ।। 47 ।।

ॐ तत्सदिति श्रीमदभगवदगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः।।1।।

ॐ इति गीता भाव प्रकाश ब्रह्मयोग विद्या शास्त्र विषय श्री कृष्ण अर्जुन संवाद अर्जुन विषाद् योग नाम का पहिलका अध्याय समाप्त ।। 1 ।।

गुरूजन बाड़े भीष्म द्रोण जे,कइसे मारेब रन में बान।
रउए कहीं परम हित माधो ,दुनू पुजनियाँ बाड़े महान ।।4 ।।

गुरूनहत्वा हि महानुभवान्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहैवभुज्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।(2।5)।।

गुरूजन मार राजपाट से,बा बढ़िया भीखा जहान।
अर्थ–कामले मारेब गुरूजन,सउनल लेहू भोग समान ।। 5 ।।

न चैतद्विद्व : कतरन्नो गरीयो–यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम–स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।(2।6)।।

हम ना जानी कवन ठीक बा, हम जितब या उनकर पार।
जेकरा मार जीत ना चाहीं,उहे कुरू सन्मुख तैयार ।। 6 ।।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।(2।7)।।

कायर मन बा धर्ममोह से,पुछीं निश्चित धरम हे तात
चेला जान कहीं हे माधो,हमरो खातिर ई शुभबात ।। 7 ।।
न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धंराज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।।(2।8)।।

निष्कण्टक धन, राज्य इन्द्र पद,पवलो मन ना होई धीर।
दूर करी जे इन्द्रिये शोक्को,नईखे लौकत ऐसन धीर ।। 8 ।।

।। संजय उवाच–संजय कहले ।।

एवमुक्त्वा हृषीकेश : गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।(2।9)

राजन ! अर्जुन कहले तबहीं,सूनी रउआ कृष्ण मुरार।
हमना युद्ध करेब एह रन में गुम्मे भइले भीन्न प्रकार ।। 9 ।।